बाइबल पर आधारित निर्णय लेना

अध्याय छः

परिस्थिति-संबंधी दृष्टिकोणः हमारे लक्ष्य को प्राप्त करना

Manuscript

thirdmill
Biblical Education. For the World. For Free.

© थर्ड मिलेनियम मिनिस्ट्रीज़ 2012 के द्वारा

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन के किसी भी भाग को प्रकाशक, थर्ड मिलेनियम मिनिस्ट्रीज़, इनकोरपोरेशन, 316, लाइव ओक्स बुलेवार्ड, कैसलबरी, फ्लोरिडा 32707 की लिखित अनुमति के बिना समीक्षा, टिप्पणी, या अध्ययन के उद्देश्यों के लिए संक्षिप्त उद्धरणों के अतिरिक्त किसी भी रूप में या किसी भी तरह के लाभ के लिए पुनः प्रकशित नहीं किया जा सकता।

पवित्रशास्त्र के सभी उद्धरण बाइबल सोसाइटी ऑफ़ इंडिया की हिन्दी की पवित्र बाइबल से लिए गए हैं। सर्वाधिकार © The Bible Society of India

थर्ड मिलेनियम मिनिस्ट्रीज़ की सेवकाई के विषय में

1997 में स्थापित, थर्ड मिलेनियम मिनिस्ट्रीज़ एक लाभनिरपेक्ष सुसमाचारिक मसीही सेवकाई है जो पूरे संसार के लिए मुफ्त में बाइबल आधारित शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध है।

संसार के लिए मुफ़्त में बाइबल आधारित शिक्षा।

हमारा लक्ष्य संसार भर के हज़ारों पासवानों और मसीही अगुवों को मुफ़्त में मसीही शिक्षा प्रदान करना है जिन्हें सेवकाई के लिए पर्याप्त प्रशिक्षण प्राप्त नहीं हुआ है। हम इस लक्ष्य को अंग्रेजी, अरबी, मनडारिन, रूसी, और स्पैनिश भाषाओं में अद्वितीय मल्टीमीडिया सेमिनारी पाठ्यक्रम की रचना करने और उन्हें विश्व भर में वितरित करने के द्वारा पूरा कर रहे हैं। हमारे पाठयक्रम का अनुवाद सहभागी सेवकाइयों के द्वारा दर्जन भर से अधिक अन्य भाषाओं में भी किया जा रहा है। पाठ्यक्रम में ग्राफिक वीडियोस, लिखित निर्देश, और इंटरनेट संसाधन पाए जाते हैं। इसकी रचना ऐसे की गई है कि इसका प्रयोग ऑनलाइन और सामुदायिक अध्ययन दोनों संदर्भों में स्कूलों, समूहों, और व्यक्तिगत रूपों में किया जा सकता है।

वर्षों के प्रयासों से हमने अच्छी विषय-वस्तु और गुणवत्ता से परिपूर्ण पुरस्कार-प्राप्त मल्टीमीडिया अध्ययनों की रचना करने की बहुत ही किफ़ायती विधि को विकसित किया है। हमारे लेखक और संपादक धर्मवैज्ञानिक रूप से प्रशिक्षित शिक्षक हैं, हमारे अनुवादक धर्मवैज्ञानिक रूप से दक्ष हैं और लक्ष्य-भाषाओं के मातृभाषी हैं, और हमारे अध्यायों में संसार भर के सैकड़ों सम्मानित सेमिनारी प्रोफ़ेसरों और पासवानों के गहन विचार शामिल हैं। इसके अतिरिक्त हमारे ग्राफिक डिजाइनर, चित्रकार, और प्रोडयूसर्स अत्याधुनिक उपकरणों और तकनीकों का प्रयोग करने के द्वारा उत्पादन के उच्चतम स्तरों का पालन करते हैं।

अपने वितरण के लक्ष्यों को पूरा करने के लिए थर्ड मिलेनियम ने कलीसियाओं, सेमिनारियों, बाइबल स्कूलों, मिशनरियों, मसीही प्रसारकों, सेटलाइट टेलीविजन प्रदाताओं, और अन्य संगठनों के साथ रणनीतिक सहभागिताएँ स्थापित की हैं। इन संबंधों के फलस्वरूप स्थानीय अगुवों, पासवानों, और सेमिनारी विद्यार्थियों तक अनेक विडिओ अध्ययनों को पहुँचाया जा चुका है। हमारी वेबसाइट भी वितरण के माध्यम के रूप में कार्य करती है और हमारे अध्यायों के अतिरिक्त सामग्रियों को भी प्रदान करती है, जिसमें ऐसे निर्देश भी शामिल हैं कि अपने शिक्षण समुदाय को कैसे आरंभ किया जाए।

थर्ड मिलेनियम मिनिस्ट्रीज a 501(c)(3) कारपोरेशन के रूप में IRS के द्वारा मान्यता प्राप्त है। हम आर्थिक रूप से कलीसियाओं के टैक्स-डीडक्टीबल योगदानों, संस्थानों, व्यापारों और लोगों पर आधारित हैं। हमारी सेवकाई के बारे में अधिक जानकारी के लिए और यह जानने के लिए कि आप किस प्रकार इसमें सहभागी हो सकते हैं, कृपया हमारी वैबसाइट http://thirdmill.org को देखें।

विषय-वस्तु

परिचय.....1
राज्य की परिस्थितियां.....2
महत्व.....2
धन्य-वचन.....3
प्रभु की प्रार्थना.....3
भौतिक आवश्यकताएं.....4
घटक.....5
राजा.....5
लोग.....6
वाचाएं.....8
विकास.....9
आरंभिक शांति.....9
विद्रोह.....10
अंतिम शांति.....10
राज्य में जीवन.....11
परमेश्वर को महिमा देना.....12
परमेश्वर की महिमा.....12
परमेश्वर को महिमा देना.....13
परमेश्वर का आनन्द उठाना.....14
मानवजाति की भूमिका.....15
व्यवस्था की भूमिका.....15
राज्य का कार्यक्रम.....17
सांस्कृतिक आदेश.....17
परिभाषा.....17
सृष्टि की विधियां.....18
प्रयोग.....19
महान् आज्ञा.....22
परिभाषा.....22
आशय.....22
सांस्कृतिक आदेश.....23
निष्कर्ष.....25

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

बाइबल पर आधारित निर्णय लेना

अध्याय छः

परिस्थिति-संबंधी दृष्टिकोण: हमारे लक्ष्य को प्राप्त करना

परिचय

मेरी कलीसिया के एक युवा फुटबाल खिलाड़ी ने हाल ही में एक लेख लिखा जो हमारे स्थानीय अखबार में छपा। उस लेख में उसने वर्णन किया फुटबाल में खेल तो लम्बे समय का होता है परन्तु गोल बहुत ही कम होते हैं। उसने यहां तक कहा कि फुटबाल के एक अच्छे खेल में एक या शून्य गोल ही होते हैं।

नैतिक मसीही जीवन भी एक अच्छे फुटबाल के खेल के समान होता है। अंतिम विश्लेषण में हम एक बड़े लक्ष्य (गोल) को प्राप्त करने के प्रयास में हैं, वह है परमेश्वर के राज्य की परम या अंतिम विजय। परन्तु यह एक ऐसा लक्ष्य नहीं है जो हम तुरंत प्राप्त कर सकते हैं। वास्तव में, परमेश्वर के लोग इसे हजारों वर्षों से पाने का प्रयास कर रहे हैं परन्तु अभी भी हमें इसे प्राप्त करना बाकी है। फिर भी, हमारे सारे विचारों, वचनों और कार्यों को उसके राज्य की विजय के द्वारा परमेश्वर को महिमा देने के लक्ष्य में योगदान देना चाहिए।

बाइबल पर आधारित निर्णय लेना की हमारी श्रृंखला में यह छठा अध्याय है, और हमने इसका शीर्षक दिया है "परिस्थिति-संबंधी दृष्टिकोण: हमारे लक्ष्य को प्राप्त करना"। इस अध्याय में हम उस अतिमहत्वपूर्ण लक्ष्य पर ध्यान देंगे जो परमेश्वर ने हमारे समक्ष रखा है, अर्थात् उसके राज्य की सफलता और विजय जब यह स्वर्ग से पूरी पृथ्वी को घेरने के लिए फैलता है।

इन सारे अध्यायों में हमने इस बात पर बल दिया है कि नैतिक निर्णय लेना एक व्यक्ति द्वारा एक परिस्थिति पर परमेश्वर के वचन को लागू करना होता है। यह सार इस तथ्य को दर्शाता है कि किसी भी नैतिक प्रश्न में तीन मुख्य पहलुओं पर ध्यान दिया जाता है; वे हैं, परमेश्वर का वचन, परिस्थिति और निर्णय लेने वाला व्यक्ति।

नैतिक निर्णय लेने के ये तीन पहलू उन तीन दृष्टिकोणों से मेल खाते हैं जो हमें नैतिक विषयों के प्रति लेने चाहिए: निर्देशात्मक दृष्टिकोण, जो परमेश्वर के प्रकट मानकों पर ध्यान देता है; परिस्थिति-संबंधी दृष्टिकोण, जो परिस्थितियों के महत्व पर ध्यान देता है; और अस्तित्व-संबंधी दृष्किोण जो मानवजाति के प्रति ध्यान को निर्देशित करता है।

पिछले अध्याय में हमने इस बात पर बल देते हुए मसीही नैतिक शिक्षा पर के परिस्थिति-संबंधी दृष्टिकोण का परिचय दिया था कि हमारी परिस्थिति की वास्तविकताओं को समझना कितना महत्वपूर्ण है। और इससे बढ़कर, हमने यह भी देखा था कि दो प्रकार की वास्तविकताएं नैतिक शिक्षा में विशेष भूमिकाएं निभाती हैं: वे लक्ष्य जो हम प्राप्त करने का प्रयास करते हैं, और वे माध्यम जिनका प्रयोग हम लक्ष्यों तक पहुंचने में करते हैं। इस अध्याय में हम हमारा ध्यान इन परिस्थिति-संबंधी विचारों में से एक पर लगाएंगे: मसीही नैतिक शिक्षा के लक्ष्य। विशेष रीति से, हम मसीही नैतिक शिक्षा के परम या अंतिम लक्ष्य के रूप में परमेश्वर के राज्य पर लगाएंगे।

हमारा अध्याय तीन मुख्य खण्डों में विभाजित होगा। पहला, हम परमेश्वर के राज्य की परिस्थितियों को जांचेंगे, और उसमें ऐसे प्रश्नों के उत्तर देंगे, जैसे कि राज्य क्या है और यह इतिहास में कैसे प्रकट होता है? दूसरा, हम राज्य में जीवन पर विचार करेंगे, और इसमें हम परमेश्वर के राज्य के भीतर हमारे व्यक्तिगत अनुभवों पर ध्यान देंगे और परमेश्वर द्वारा हमारे लिए रखे गए सामान्य लक्ष्यों के आधार पर उनका मूल्यांकन करेंगे। और तीसरा, हम राज्य के लिए कार्यक्रम का वर्णन करेंगे, इसमें हम उन और भी अधिक विशेष एवं

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

तात्कालिक लक्ष्यों को देखेंगे जिन्हें परमेश्वर ने राज्य के व्यापक लक्ष्य को प्राप्त करने के माध्यमों के रूप में रखा है। आइए, परमेश्वर के राज्य की परिस्थितियों की ओर मुड़ने के द्वारा इसे आरंभ करें।

राज्य की परिस्थितियां

हम राज्य की परिस्थितियों के तीन पहलुओं पर चर्चा करेंगे। पहला, हम परमेश्वर के राज्य के महत्व को स्पष्ट करेंगे, और दर्शाएंगे कि यह कहना क्यों सही है कि परमेश्वर का राज्य मसीही नैतिक शिक्षा का परम लक्ष्य है। दूसरा, राज्य के घटकों, अर्थात परमेश्वर के शासन के मूल भागों को पहचानेंगे। और तीसरा, हम राज्य के विकास की खोज करेंगे, अर्थात उन रूपों की जिनमें यह इतिहास में विकसित हुआ है। आइए पहले हमारे ध्यान को परमेश्वर के राज्य के महत्व की ओर लगाएं।

महत्व

जैसा कि हमने पिछले अध्याय में कहा था, नैतिक निर्णय लेने में एक उचित लक्ष्य सदैव मन में रहता है। और जैसा कि हमने बार-बार कहा है, नैतिक शिक्षा का सबसे बड़ा लक्ष्य परमेश्वर की महिमा है। परन्तु हमें यह भी महसूस करना है कि परमेश्वर की महिमा उसके राजत्व और उसके राज्य में प्रकट होती है।

उत्पत्ति से प्रकाशितवाक्य में पवित्रशास्त्र प्रकट करता है कि परमेश्वर सारी सृष्टि के ऊपर राजा है। और यह सिखाता है कि इतिहास का परम लक्ष्य मसीह के राज्य के द्वारा परमेश्वर के राजत्व को दर्शाना है। इस भाव में, हम परमेश्वर के राज्य को बाइबल की संपूर्ण कहानी के रूप में समझ सकते हैं।

पवित्रशास्त्र सिखाता है कि परमेश्वर मसीह में उसके राज्य की स्थापना एवं विजय में सबसे अधिक महिमा को प्राप्त करता है। अर्थात्, उसे तब बहुत अधिक सम्मान या आदर प्राप्त होगा जब उसे सारे प्राणी सर्वोच्च सृष्टिकर्ता परमेश्वर, सबके ऊपर राजा के रूप में मानेंगे। 1 तीमुथियुस 1:17 में पौलुस के मन में इतिहास का यही परम लक्ष्य था, जहां उसने परमेश्वर की प्रशंसा का वर्णन किया:

> अब सनातन राजा अर्थात अविनाशी, अनदेखे, अद्वैत परमेश्वर का आदर और महिमा युगानुयुग होती रहे। आमीन। (1 तीमुथियुस 1:17)

अतः, जब हम नैतिक शिक्षा के उच्चतम लक्ष्य के रूप में परमेश्वर की महिमा के बारे में बात करते हैं, तो हम यह भी कह रहे हैं कि परमेश्वर का राज्य नैतिक शिक्षा का सबसे बड़ा लक्ष्य है। अब मसीही नैतिक शिक्षा के लक्ष्य के रूप में परमेश्वर के राज्य के बारे में कहने के लिए पवित्रशास्त्र में बहुत सी बातें हैं। परन्तु इस विषय को आरंभ करने के लिए हम उन बातों पर ध्यान देंगे जो यीशु ने मत्ती 5-7 के पहाड़ी संदेश में परमेश्वर के राज्य के बारे में कही थीं।

अपने पहाड़ी संदेश के दौरान नैतिक शिक्षा के लक्ष्य के रूप में हम यीशु द्वारा तीन बार परमेश्वर के राज्य के बारे में कही बातों पर ध्यान देंगे। पहला, हम संदेश के आरंभ पाए जाने वाले धन्य-वचनों में परमेश्वर के राज्य की चर्चा पर ध्यान देंगे। दूसरा, हम प्रभु की प्रार्थना पर ध्यान देंगे। और तीसरा, हम भौतिक जरूरतों के विषय पर यीशु की शिक्षाओं को देखेंगे। इन सारे खण्डों में, यीशु ने दर्शाया कि परमेश्वर का राज्य हमारे

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

जीवन की सबसे बड़ी प्रमुखता होनी चाहिए। आइए मत्ती 5:3-12 में पाए जाने वाले धन्य-वचनों के साथ आरंभ करें।

धन्य-वचन

धन्य-वचन धन्यता के बारे में कहा गया कथन है। इसीलिए मत्ती 5:3-12 में यीशु के कथनों को "धन्य-वचन" कहा जाता है, क्योंकि वे सारे "धन्य हैं... " के साथ आरंभ होते हैं। ये धन्य-वचन उन अनेक बातों को दर्शाते हैं जिनकी परमेश्वर आशीष देता है।

धन्यता पर यीशु की शिक्षाएं नैतिक शिक्षा के हमारे अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण हैं क्योंकि, जैसा कि आपको याद होगा, हमने मसीही नैतिक शिक्षा को इस प्रकार परिभाषित किया था:

> वह धर्मविज्ञान जिसे निर्धारित करने के उन साधनों के रूप में देखा जाता है कि कौनसे मनुष्य, कार्य और स्वभाव परमेश्वर की आशीषों को प्राप्त करते हैं और कौनसे नहीं।

इस परिभाषा के द्वारा परमेश्वर जिसे भी धन्य या आशीषित ठहराता है वह अच्छा और सही है। अतः, धन्य-वचनों के साथ यीशु ने लोगों को नैतिक जीवन बिताने के लिए उत्साहित करने के द्वारा अपने संदेश को आरंभ किया। और महत्वपूर्ण बात यह है कि उसने परमेश्वर के राज्य के आधार पर आशीषों और नैतिक शिक्षा का वर्णन किया। इसके कुछ और अधिक स्पष्ट उदाहरणों पर ध्यान दें:

- मत्ती 5:3 में आशीष थी "स्वर्ग का राज्य उन्हीं का है"। इसी आशीष को पद 10 में दोहराया गया। यद्यपि मत्ती ने यहां "स्वर्ग का राज्य" वाक्यांश का प्रयोग किया है, परन्तु अनेक विद्वानों ने यहां ध्यान दिया है कि यह शब्द केवल मत्ती में ही पाया जाता है और कि इसका अर्थ वही है जो "स्वर्ग का राज्य" का है।
- पद 5 में आशीष थी "वे पृथ्वी के अधिकारी होंगे"। यह भी एक राज्य की आशीष थी क्योंकि यह उस नई पृथ्वी के बारे में बताता है जिसकी रचना परमेश्वर तब करेगा जब उसका राज्य अपनी संपूर्णता में आएगा।
- और पद 9 में आशीष थी "वे परमेश्वर के पुत्र कहलाएंगे"। धन्यता का यह कथन भी परमेश्वर के राजत्व और उसके राज्य को दर्शाता है। बाइबल के दिनों में, मानवीय राजाओं को उनके अधीन के लोगों द्वारा "पिता" के रूप में संबोधित किया जाता था। पवित्रशास्त्र में भी यही बात पाई जाती है; परमेश्वर को भी प्रायः पिता कहा जाता है क्योंकि वह हमारा प्रतापी पिता है।

किसी न किसी रूप में, यीशु द्वारा उल्लिखित ये सारी आशीषें परमेश्वर के राज्य के भाव से गहराई से जुड़ी हुई थीं। और यीशु ने विशेष रूप से परमेश्वर के राज्य की आशीषों को ऐसे पुरस्कार या लक्ष्य के समान सामने रखा जो उसके श्रोताओं को नैतिक रूप से जीने में प्रोत्साहित करे। उसने मसीही नैतिक शिक्षा के एक आधारभूत केन्द्र के रूप में परमेश्वर के राज्य को प्रस्तुत किया।

प्रभु की प्रार्थना

धन्य-वचनों के अतिरिक्त, मत्ती 6:9-13 में पाई जाने वाली प्रभु की प्रार्थना भी नैतिक शिक्षा के लक्ष्य के रूप में परमेश्वर के राज्य पर ध्यान देती है। मत्ती 6:9-10 में प्रभु की प्रार्थना के आरंभ को देखें:

> हे हमारे पिता, तू जो स्वर्ग में है, तेरा नाम पवित्र माना जाए। तेरा राज्य आए, तेरी इच्छा जैसी स्वर्ग में पूरी होती है, वैसे पृथ्वी पर भी हो। (मत्ती 6:9-10)

इन चारों कथनों का केन्द्र राज्य है।

"हे हमारे पिता, तू जो स्वर्ग में है," के संबोधन में परमेश्वर को हमारे पिता के रूप में माना गया है, परन्तु ध्यान दें कि उसे विशेष रूप से ऐसे पिता के रूप में दर्शाया गया है जो स्वर्ग में है। सारी बाइबल में स्वर्ग की छवि एकसमान है: यह परमेश्वर का सिंहासन-कक्ष है। अतः, जब यीशु ने अपने चेलों से यह प्रार्थना करने के लिए कहा, "हे हमारे पिता, तू जो स्वर्ग में है," तो उसके मन में था कि वे अपने प्रतापी पिता, स्वर्ग में विराजमान दैवीय राजा, अपने साम्राज्य के महान् पिता के रूप में परमेश्वर से प्रार्थना करें।

पहली विनती, "तेरा नाम पवित्र माना जाए," में यीशु ने अपने चेलों को परमेश्वर के नाम को आदर देने का निर्देश दिया। पवित्रशास्त्र प्रायः उसके नाम को उसके व्यक्तित्व और अधिकार के समकक्ष रखता है। प्रभु की प्रार्थना के संदर्भ में, यह ऐसी विनती है कि सारे प्राणी परमेश्वर के अद्वितीय राजसी अधिकार के कारण उसके सामने झुकें।

दूसरी विनती, "तेरा राज्य आए," में यीशु ने अपने चेलों को पृथ्वी पर परमेश्वर के राज्य की पूर्णता के लिए प्रार्थना करने हेतु उत्साहित किया। यह उसकी इस शिक्षा के अनुरूप था कि परमेश्वर अपने राज्य को पृथ्वी तक फैला रहा है।

तीसरी विनती, "तेरी इच्छा जैसी स्वर्ग में पूरी होती है, वैसे पृथ्वी पर भी हो," में यीशु ने दर्शाया कि स्वर्ग के सारे प्राणी परमेश्वर की इच्छा को पूरा करते हैं। परन्तु यीशु ने हमसे यह प्रार्थना करने को कहा कि पृथ्वी के सारे प्राणी भी उसी प्रकार दैवीय राजा की आज्ञा मानें। अतः, एक बार फिर हम देखते हैं कि यीशु परमेश्वर के राज्य को मसीही नैतिक शिक्षा की एक उच्च प्राथमिकता के रूप में प्रस्तुत करता है।

भौतिक आवश्यकताएं

अब जब हमने धन्य-वचनों और प्रभु की प्रार्थना को देख लिया है, तो हम भौतिक जरूरतों के विषय पर यीशु की शिक्षाओं की ओर मुड़ने के लिए तैयार हैं। यह अनुच्छेद मत्ती 6:25-34 में प्रकट होता है।

प्रत्येक की भौतिक जरूरतें होती हैं, जैसे कि भोजन और वस्त्र। परन्तु यीशु ने सिखाया कि हमें इन विषयों पर चिंतित नहीं होना चाहिए। इसकी अपेक्षा, हमें परमेश्वर के राज्य पर ध्यान देना चाहिए। मत्ती 6:31-33 में यीशु के शब्दों को सुनें:

> इसलिये तुम चिन्ता करके यह न कहना, कि हम क्या खाएंगे, या क्या पीएंगे, या क्या पहिनेंगे?... तुम्हारा स्वर्गीय पिता जानता है, कि तुम्हें ये सब वस्तुएं चाहिए। इसलिये पहिले तुम उसके राज्य और धर्म की खोज करो तो ये सब वस्तुएं भी तुम्हें मिल जाएंगी। (मत्ती 6:31-33)

भोजन और वस्त्र जैसी भौतिक जरूरतों पर उचित ध्यान देना गलत नहीं है। परन्तु यहां यीशु ने पूरी तरह से स्पष्ट कर दिया कि परमेश्वर का राज्य उन अनेक लक्ष्यों में से एक नहीं जो हम मसीह के अनुयायी होने के रूप में रखते हैं। जीवन के सारे लक्ष्यों में से हमारा पहला और प्रमुख लक्ष्य पृथ्वी पर उसके राज्य की विजय के द्वारा परमेश्वर की महिमा होना चाहिए।

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

अतः, हम देखते हैं कि पहाड़ी संदेश में कई अवसरों पर यीशु ने यह बिल्कुल स्पष्ट कर दिया कि मसीही जीवन का परम लक्ष्य, वह लक्ष्य जिसकी ओर हम बढ़ने का प्रयास करते हैं, उसके राज्य की विजय के द्वारा परमेश्वर की महिमा है।

परमेश्वर के राज्य के महत्व को देखने के बाद, हमें राज्य के घटकों को जांचना चाहिए ताकि हम जान सकें कि उसके मौलिक तत्व क्या हैं।

घटक

परमेश्वर के राज्य का वर्णन करने के कई तरीके हैं, परन्तु हम राज्य के तीन मुख्य घटकों के बारे में बात करेंगे। पहला, हम राजा की भूमिका के बारे में बात करेंगे। दूसरा, हम राज्य के लोगों या नागरिकों की ओर मुड़ेंगे। और तीसरा, हम उन वाचाओं को देखेंगे जो राजा और उसके लोगों के बीच के संबंध को संचालित करती हैं।

राजा

आज के लोगों को इस बात का अर्थ समझने में कठिनाई होती है कि परमेश्वर अपने राज्य का शासक है, क्योंकि हम में से अधिकांश लोग कभी किसी मानवीय राजा के अधिकार में नहीं रहे। परन्तु बाइबल के प्राचीन संसार में लोग राजाओं और राज्यों से परिचित थे। उन दिनों में राजाओं से अपेक्षा की जाती थी कि वे अपने राष्ट्रों के नागरिकों के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को पूरा करें। उन्हें उनकी रक्षा करनी होती थी, उनकी जरूरतें पूरी करनी होती थीं, और दया के साथ उनसे व्यवहार करना होता था। राजा के पास कर लेने, सेनाओं को बढ़ाने, और जीवन के कई पहलुओं को संचालित करने का अधिकार होता था। अच्छे राजा अपने लोगों की भलाई के लिए बुद्धिमानी से शासन करते थे। वे उन्हें बाहरी ताकतों और प्राकृतिक एवं घरेलू समस्याओं से बचाने के लिए कड़ी मेहनत करते थे।

बाइबल में परमेश्वर को प्रायः सारी सृष्टि पर सुज़रेन, या सर्वोच्च सम्राट के रूप में प्रस्तुत किया गया है। और पृथ्वी के सारे राजा उसके वासल, या सेवक राजा हैं, जो पृथ्वी पर रहते हैं परन्तु स्वर्ग में अपने से बड़े राजा को शुल्क अदा करते हैं। उदाहरण के तौर पर, हम भजन 103:19 में इन वचनों को पढ़ते हैं:

> यहोवा ने तो अपना सिंहासन स्वर्ग में स्थिर किया है, और उसका राज्य पूरी सृष्टि पर है। (भजन 103:19)

और भजन 47:9 घोषणा करता है:

> राज्य राज्य के धनवान इब्राहीम के परमेश्वर की प्रजा होने के लिये इकट्ठे हुए हैं। वह तो शिरोमणि है! (भजन 47:9)

सबसे बड़े राजा के रूप में परमेश्वर का सर्वोच्च शासन एक मुख्य विषय है जो सारी बाइबल में विद्यमान है।

यद्यपि सृष्टिकर्ता के रूप में परमेश्वर सारे राष्ट्रों पर राजा है, परन्तु पवित्रशास्त्र यह भी सिखाता है कि वह एक विशेष रूप में पुराने नियम में इस्राएल का और नए नियम में कलीसिया का राजा था। वास्तव में, जब परमेश्वर ने इस्राएल पर दाऊद के सिंहासन को स्थापित किया था, तो दाऊद के सिंहासन ने स्वयं परमेश्वर के

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

अधिकार और सामर्थ को प्रस्तुत किया। सुनिए 1 इतिहास 29:23 किस प्रकार इस्राएल के मानवीय राजा के बारे में बात करता है:

> सुलैमान अपने पिता दाऊद के स्थान पर राजा हो कर यहोवा के सिंहासन पर विराजने लगा। (1 इतिहास 29:23)

ध्यान दें कि दाऊद और सुलेमान दोनों यरूशलेम में यहोवा के सिंहासन पर बैठे। सिंहासन अभी भी परमेश्वर का है, इसलिए इस्राएल के राजा उस पर केवल उसके वासल के रूप में बैठे।

और मत्ती 5:34-35 में यीशु ने पुष्टि की कि उसके दिनों में भी ऐसा ही हुआ। सुनिए उसने शपथों के विषय में क्या निर्देश दिया:

> कभी शपथ न खाना; न तो स्वर्ग की, क्योंकि वह परमेश्वर का सिंहासन है। न धरती की, क्योंकि वह उसके पांवों की चौकी है; न यरूशलेम की, क्योंकि वह महाराजा का नगर है। (मत्ती 5:34-35)

परमेश्वर ने स्वर्ग के अपने सिंहासन से इस्राएल पर शासन किया, यरूशलेम तब भी उसके राज्य की सांसारिक राजधानी था।

हमने देख लिया है कि परमेश्वर सारी सृष्टि के ऊपर राजा है और इस्राएल एवं कलीसिया पर एक विशेष रूप में राजा है, तो अब हमें परमेश्वर के राज्य में रहने वाले लोगों या नागरिकों की ओर ध्यान लगाना चाहिए।

लोग

क्योंकि परमेश्वर सारी सृष्टि के ऊपर राजा है, फिर भी एक ऐसा भाव है जिसमें उसका राज्य हर जीवित व्यक्ति के ऊपर सदैव रहा है। परन्तु जब बाइबल परमेश्वर के राज्य के लोगों के बारे में बात करती है, तो यह सामान्यतः उन लोगों के लिए कह रही है जिन्हें परमेश्वर ने संसार के ऐसे लोगों की अपेक्षा बुलाया है जो बुरे मार्गों में चलते हैं। पुराना नियम सामान्यतः इस प्रकार से अब्राहम और उसके वंश के बारे में बात करता है। और नया नियम सामान्यतः इस भाषा का प्रयोग कलीसिया के बारे में बात करने में करता है, क्योंकि हर वर्ग के मसीहियों को मसीह में अब्राहम के परिवार में ग्रहण किया गया है।

जब परमेश्वर ने संसार की सृष्टि की तो उसने मानवजाति को उसके वासल राजाओं के रूप में स्थापित किया। उसने आदम और हव्वा और उनके बच्चों को नियुक्त किया कि वे उसके सेवक राजाओं के समान सारी सृष्टि पर शासन करें। परमेश्वर के राज्य की सफलता के लिए उन्हें सारे जानवरों और स्वयं को संचालित करना था। भजन 8:5-6 में दाऊद के वचनों को सुनें:

> तू ने... महिमा और प्रताप का मुकुट उसके (मनुष्य के) सिर पर रखा है। तू ने उसे अपने हाथों के कार्यों पर प्रभुता दी है। (भजन 8:5-6)

उत्पत्ति अध्याय 1 में सृष्टि के वर्णन का उल्लेख करते हुए, दाऊद ने दर्शाया कि मानवजाति को सारे संसार और उसके निवासियों के ऊपर शासक के रूप में शिरोमणि नियुक्त किया गया है। सारांश में, परमेश्वर ने मानवजाति को सृष्टि के ऊपर अपने वासल राजाओं के रूप में स्थापित किया।

उत्पत्ति में ही, हम सीखते हैं कि मानवजाति के कार्य का एक भाग सारे संसार को अदन की वाटिका के समान बनाना था। जब परमेश्वर ने संसार की सृष्टि की तो सब कुछ अच्छा था, परन्तु केवल एक स्थान जो

परमेश्वर ने मनुष्यजाति को रखने के लिए उपयुक्त समझा, वह अदन की वाटिका था। जैसा कि हम उत्पत्ति 2:8-9 में पढ़ते हैं:

> और यहोवा परमेश्वर ने पूर्व की ओर अदन देश में एक वाटिका लगाई; और वहां आदम को जिसे उसने रचा था, रख दिया। और यहोवा परमेश्वर ने भूमि से सब भांति के वृक्ष, जो देखने में मनोहर और जिनके फल खाने में अच्छे हैं उगाए। (उत्पत्ति 2:8-9)

वाटिका को मनुष्यजाति के लिए तैयार किया गया था और उसमें मनुष्यजाति ही रहनी थी। और मनुष्यजाति की वासल राजाओं के रूप में नियुक्ति इसलिए की गई थी कि वे संसारभर में इस प्रारूप को फैला दें। परमेश्वर ने इसे उत्पत्ति 1:28 में स्पष्टता के साथ कहा, जहां उसने हमारे पहले अभिभावकों को यह निर्देश दिया था:

> फूलो-फलो और पृथ्वी में भर जाओ, और उसको अपने वश में कर लो। (उत्पत्ति 1:28)

अतः हम देखते हैं कि सारे संसार को भरने की जिम्मेदारी मानवजाति की थी, जो इसे परमेश्वर के राज्य के नागरिकों से भर दे, और इसे वैसे बना दे जैसे परमेश्वर ने अदन की वाटिका को बनाया था।

अतः, आरंभ से ही परमेश्वर का राज्य अपने केन्द्र और नियति में आदम के चारों ओर था। परमेश्वर ने सारी मानवजाति पर प्रत्यक्ष रूप से शासन किया और उसकी इच्छा थी कि सारा संसार उसका राज्य बन जाए। और यह आदम और हव्वा के समय से अब्राहम के दिनों तक जारी रहा, जो मसीह से 2000 वर्ष पहले रहा था। हम इसके बारे में उत्पत्ति 17:6 में पढ़ते हैं, जहां यहोवा ने अब्राहम से यह प्रतिज्ञा की थी:

> मैं तुझे अत्यन्त फलवन्त करूँगा, और तुझ को जाति जाति का मूल बना दूंगा, और तेरे वंश में राजा उत्पन्न होंगे। (उत्पत्ति 17:6)

अब्राहम के दिनों में परमेश्वर ने अपने केन्द्र को राष्ट्रीय स्तर तक रखा, जिसमें उसने संसार पर अपने विशाल शासन के भीतर अपने विशेष राज्य के रूप में अब्राहम के वंश पर ध्यान को केन्द्रित किया। यह राष्ट्रीय केन्द्र यीशु में समाप्त हुआ जो पृथ्वी पर परमेश्वर के लोगों का अंतिम वासल राजा था।

यीशु ने कई स्थानों पर इस राजत्व के बारे में बात की, जैसे मत्ती 27:11 जहां पिलातुस के साथ हम उसकी बातचीत को पाते हैं:

> जब यीशु राज्यपाल के साम्हने खड़ा था, तो राज्यपाल ने उस से पूछा कि क्या तू यहूदियों का राजा है? यीशु ने उस से कहा, तू आप ही कह रहा है। (मत्ती 27:11)

यीशु के राजत्व में परमेश्वर के राज्य का केन्द्र कलीसियाई हो गया था, अर्थात् यह कलीसिया पर केन्द्रित था। सुसमाचार के माध्यम से उद्धार इस्राएल के लोगों और इसकी सीमाओं से बाहर इतनी सफलता से फैला कि परमेश्वर के राज्य का केन्द्र अब कोई एक राष्ट्र नहीं बल्कि सारे संसार की कलीसिया बन गई थी। परमेश्वर के राज्य में अब हर वर्ग के लोग शामिल हैं और यह पृथ्वी के छोर तक निरंतर फैल रहा है।

उदाहरण के तौर पर, प्रकाशितवाक्य 5:9-10 पर ध्यान दीजिए जहां यीशु की प्रशंसा का स्वर्गीय गीत इन शब्दों को समाहित करता है:

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

> तू ने अपने लहू से हर एक कुल, और भाषा, और लोग, और जाति में से परमेश्वर के लिये लोगों को मोल लिया है। और उन्हें हमारे परमेश्वर के लिये एक राज्य और याजक बनाया; और वे पृथ्वी पर राज्य करते हैं। (प्रकाशितवाक्य 5:9-10)

राजा और लोगों के बारे में बात करने के बाद, अब हमें राज्य के तीसरे घटक का उल्लेख करना चाहिए: वे वाचाएं जो उनके बीच के संबंधों को संचालित करती हैं।

वाचाएं

प्राचीन संसार में, सुज़रेन राजा प्रायः वासल राष्ट्रों एवं उनके राजाओं पर वाचाओं या संधियों को लागू करने के द्वारा अपने विशाल साम्राज्यों का संचालन किया करते थे। ये वाचाएं विशिष्ट रूप से वासल के प्रति सुजरेन के सद्भाव का उल्लेख करती थीं, सुजरेन के प्रति वासल की जिम्मेदारियों को दर्शाती थीं, और इन जिम्मेदारियों के प्रति आज्ञाकारिता या अनाज्ञाकारिता के परिणामों को बताती थीं।

इसी प्रकार से, संपूर्ण बाइबल में परमेश्वर ने वाचाओं के माध्यम से अपने राज्य का संचालन किया। उसकी वाचाओं ने अपने लोगों के प्रति परमेश्वर के सद्भाव को व्यक्त किया, परमेश्वर के प्रति लोगों की जिम्मेदारियां दर्शाई एवं इन जिम्मेदारियों के प्रति आज्ञाकारिता या अनाज्ञाकारिता के परिणामों को बताया, विशेषकर, आज्ञाकारिता के लिए आशीषों और अनाज्ञाकारिता के लिए श्रापों को बताया।

परमेश्वर और उसके लोगों के बीच छः मुख्य वाचाओं के बारे में सामान्यतः बात की जाती है। बाइबल होशे 6:7 में आदम के साथ परमेश्वर की वाचा; उत्पत्ति 6-9 में नूह के साथ वाचा; उत्पत्ति 15-17 में अब्राहम के साथ वाचा; मुख्यतः निर्गमन 19-24 में मूसा के माध्यम से वाचा; 2 शमूएल 7 एवं भजन 89 और 132 में दाऊद के साथ वाचा; और लूका 22:20 एवं इब्रानियों 12:23-29 जैसे स्थानों पर मसीह में अंतिम वाचा के बारे में बात करती है। ये वाचाएं कभी परस्पर विरोधी नहीं रही हैं। बल्कि उन्होंने बारी-बारी से परमेश्वर के राज्य का संचालन और प्रबंधन किया जब यह इतिहास में बढ़ता गया। आरंभ से ही मनुष्यजाति के साथ परमेश्वर का संबंध वाचा के द्वारा ही संचालित किया जाता रहा है। अपने लोगों के साथ परमेश्वर के संबंध की वाचायी प्रकृति इस्राएल के इतिहास में संपूर्ण पुराने नियम में जारी रही। और नए नियम के मसीही विश्वास को मसीह में नई वाचा के आधार पर ही स्पष्ट किया जाता है।

यह समझना कि परमेश्वर ने सदैव अपनी वाचा के माध्यम से ही अपने राज्य का संचालन किया है, मसीही नैतिक शिक्षा के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है। हमारे अध्यायों के संदर्भ में इसे रखें तो, बाइबलीय वाचाएं हमारी परिस्थिति की वास्तविकताओं को दर्शाती हैं- कि परमेश्वर हमारा राजा है और कि हम उसके राज्य के सेवक हैं। वे राज्य के ऐसे लक्ष्यों को स्थापित करती हैं जिन्हें परमेश्वर आशीष देता है, और वे ऐसे कई माध्यमों को चित्रित करती हैं जिनका हमें उन लक्ष्यों को पाने में इस्तेमाल करना है जिन्हें वह आशीष देता है। सारांश में, परमेश्वर के साथ हमारा वाचायी संबंध हमें यह समझने में सहायता करता है कि हमारे जीवन के हर पहलू को किस तरह से कार्य करना चाहिए कि हमारे महान् राजा को महिमा मिले।

हमने यहां मसीही नैतिक शिक्षा के लक्ष्य के रूप में परमेश्वर के राज्य के महत्व को जांच लिया है और राज्य के घटकों को देख लिया है, अब हमें राज्य के ऐतिहासिक विकास को संक्षिप्त रूप में दर्शाना चाहिए, अर्थात उस रूपरेखा को जो परमेश्वर के राज्य ने प्रदर्शित की हैं और जिन्हें वह संपूर्ण इतिहास में प्रदर्शित करेगा।

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

विकास

बाइबल की कहानी को इन तीन ऐतिहासिक चरणों में सारगर्भित करना एक लम्बी परंपरा रही है: सृष्टि, पतन और छुटकारा। और हम इसी मूलभूत रूपरेखा का अनुसरण करेंगे। परन्तु हम हमारे राज्य के महत्व को दर्शाने के लिए इन चरणों को भिन्न नाम देंगे। हम सृष्टि के चरण को ऐसे समय के रूप में बताएंगे जब राज्य आरंभिक शांति की अवस्था में था। मानवजाति के पाप में गिरने की अवस्था को हम दैवीय राजा के विरूद्ध मानवजाति के विद्रोह के रूप में दर्शाएंगे। और हम छुटकारे के चरण को सृष्टि की रचना के समय की शांति से भी अधिक अंतिम या परम शांति के रूप में बताएंगे, जब परमेश्वर अपने राज्य को इसकी महिमामय संपूर्णता में लाएगा।

हम इन तीन चरणों को ऐतिहासिक क्रम में संबोधित करेंगे, हम आरंभिक शांति से शुरू करेंगे, मानवजाति के विद्रोह के साथ आगे बढ़ेंगे और अंत में राज्य की परम शांति के समय के साथ समाप्त करेंगे। आइए पहले हमारे ध्यान को आरंभिक शांति की ओर लगाएं।

आरंभिक शांति

आरंभ में जब परमेश्वर ने जगत की रचना की तो मनुष्यजाति परमेश्वर के साथ एक सिद्ध सामंजस्यता में रहती थी। आदम और हव्वा आज्ञाकारी सेवक थे। और फलस्वरूप, परमेश्वर और मनुष्यजाति के बीच शांति या मेल था।

जैसा कि हम देख चुके हैं, इस समय के दौरान परमेश्वर ने मनुष्यजाति को उसके वासल राजाओं के रूप में सेवा करने के लिए नियुक्त किया। पहले पहल तो मनुष्यजाति ने परमेश्वर के प्रति अपनी जिम्मेदारियों की सिद्ध अनुरूपता में अपनी भूमिका को बखूबी अंजाम दिया। फलस्वरूप, आदम और हव्वा परमेश्वर के साथ निकट संगति में रहे, और अदन की वाटिका में भी निरंतर रहते रहे जहां जीवन आनन्दमय और सरल था।

वास्तव में, शेष पवित्रशास्त्र प्रायः इस वाटिका की परिस्थिति को एक बड़ी शांति और खुशहाली के रूप में देखता है। उदाहरण के तौर पर, यशायाह 51:3 में हम इन शब्दों को पढ़ते हैं:

> यहोवा ने सिय्योन को शान्ति दी है, उसने उसके सब खण्डहरों को शान्ति दी है; वह उसके जंगल को अदन के समान और उस के निर्जल देश को यहोवा की वाटिका के समान बनाएगा; उस में हर्ष और आनन्द और धन्यवाद और भजन गाने का शब्द सुनाई पड़ेगा। **(यशायाह 51:13)**

अदन की वाटिका में शांति के समय के दौरान, मानवीय जीवन आनन्द और प्रसन्नता, धन्यवाद और गाने-बजाने से परिपूर्ण था। इस आरंभिक समय में शेष संसार अविकसित था। परन्तु वाटिका में, जहां मानवीय समाज रहता था, वहां एक बड़ी शांति या मेल था।

और जैसा कि हम उत्पत्ति 3 में पढ़ते हैं, यह एक ऐसा संसार था जिसमें काम करना और बच्चों को जन्म देना तुलनात्मक रूप से सरल और आनन्द से भरा हुआ था। किसी शत्रु से युद्ध का डर नहीं था; किसी जानवर से हिंसा का डर नहीं था; किसी बीमारी से स्वास्थय को खतरा नहीं था; किसी सूखे, या बाढ़ या आग से घरों या फसलों के नाश होने का डर नहीं था। बल्कि, परमेश्वर आदम और हव्वा की प्रेमपूर्ण देखभाल किया करता था और वाटिका में उनके साथ चलता था और उनसे मुलाकात करता था।

सारांश में, यह एक ऐसा संसार था जिसमें वाचा के सभी घटक मानवजाति के पक्ष में उचित रूप से कार्य करते थे। महान् राजा परमेश्वर ने अपने लोगों की रचना करने के द्वारा, उन्हें शांतिपूर्ण वाटिका में रखने के

द्वारा और सारी सृष्टि के ऊपर उन्हें अधिकार देने के द्वारा उनके प्रति एक अविश्वसनीय दयालुता को प्रकट किया था। मानवीय जिम्मेदारियों के बारे में कहें तो, परमेश्वर ने उनसे उसकी सेवा करने और उसकी आज्ञा मानने की मांग की थी। और उन्होंने भी बिना किसी गलती के ऐसा किया। और इसके परिणामों के बारे में कहें तो मानवजाति की आज्ञाकारिता के कारण उन्हें परमेश्वर से अपार आशीषें मिलीं। परमेश्वर ने मानवजाति की रचना इस प्रकार की थी, और आज भी संसार को इसी रूप में कार्य करना है।

दुर्भाग्यवश, परमेश्वर के राज्य का इतिहास आरंभिक शांति के इस समय से परमेश्वर के विरूद्ध विद्रोह की ओर आगे बढ़ता है- अर्थात् एक ऐसे समय की ओर जब मानवजाति ने अपने महान् राजा के प्रति अपनी वाचायी जिम्मेदारियों को तोड़ा और उसके प्रति विद्रोह किया।

विद्रोह

हम सब परमेश्वर के विरूद्ध मानवजाति के आरंभिक विद्रोह की कहानी जानते हैं। उत्पत्ति अध्याय 3 दर्शाता है कि सांप ने हव्वा की परीक्षा ली कि वह भले और बुरे के ज्ञान के वृक्ष का प्रतिबंधित फल खाए, और हव्वा उस परीक्षा में गिर गई। उसने यह फल आदम को भी दिया और उसने भी यह फल खाया। इस प्रकार से पाप करने के द्वारा मानवजाति ने अपनी एक वाचायी जिम्मेदारी का उल्लंघन किया। और फलस्वरूप, उन्होंने वाचायी श्रापों को ग्रहण किया।

उनके विद्रोह के प्रत्युत्तर में परमेश्वर ने आदम और हव्वा को वाटिका से बाहर निकाल दिया और एक ऐसे संसार में रहने को विवश किया जहां काम करने के लिए जमीन कठोर थी, जहां बच्चों को जन्म देना पीड़ादायक था, जहां बीमारी और अकाल और जंगली जानवरों और युद्ध ने उनके और उनकी संतान के समक्ष डर पैदा कर दिया था। वे अभी भी वाचायी जिम्मेदारियों से बंधे हुए था, परन्तु अब वे इन जिम्मेदारियों में असफल रहने के नकारात्मक परिणामों का अनुभव कर रहे थे।

और संपूर्ण इतिहास में इस विद्रोह ने संसार के ऊपर अपनी छाप छोड़ी है। मनुष्यजाति अपने महान् राजा के विरूद्ध निरंतर पाप करती रही है, और परमेश्वर ने वाचायी श्रापों के साथ मानवजाति को दंडित करना जारी रखा है। नूह के दिनों में उसने जलप्रलय से सारे संसार को नाश किया। उसने बीमारी, प्रकृति और युद्ध को अनुमति दी कि वे मानवजाति को पीढ़ी दर पीढ़ी नाश करते रहें। और इन सबके बावजूद भी मानवजाति ने कोई सबक नहीं सीखा। पश्चाताप के द्वारा परमेश्वर की ओर मुड़ने और वाचायी जिम्मेदारियों का पालन करने की अपेक्षा हम निरंतर विद्रोह करते रहे एवं वाचायी श्रापों को पाते रहे। परन्तु परमेश्वर की दया हो कि उसने हमें विद्रोह और श्रापों में नहीं छोड़ा। इसकी अपेक्षा, उसने अपने लोगों को अंतिम या परम शांति देने और अपने लोगों को पुनः आशीष प्रदान करने का निश्चय किया।

अंतिम शांति

छोटे-छोटे रूपों में परमेश्वर मानवजाति के पाप में गिरने के तुरन्त बाद से ही अपने राज्य में शांति की पुनर्स्थापना करने लगा। जैसा कि हम उत्पत्ति 3 में पढ़ते हैं, परमेश्वर ने आदम और हव्वा को पाप करते ही मार नहीं डाला। इसकी अपेक्षा, उसने उन्हें जीने दिया। और उन्हें श्राप देने के बीच में ही, उसने सुसमाचार का पहला प्रस्ताव उन्हें दिया। उत्पत्ति 3:15 में सांप को कहे गए परमेश्वर के वचनों को सुनें:

> और मैं तेरे और इस स्त्री के बीच में, और तेरे वंश और इसके वंश के बीच में बैर उत्पन्न करुंगा, वह तेरे सिर को कुचल डालेगा, और तू उसकी एड़ी को डसेगा। (उत्पत्ति 3:15)

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

यहां परमेश्वर ने स्पष्ट किया कि स्त्री का वंश सांप के सिर को कुचलेगा। धर्मविज्ञान इसे सामान्यतः "पहला सुसमाचार" कहते हैं, क्योंकि इतिहास में पहली बार ऐसा हुआ कि परमेश्वर ने पाप के श्राप से मानवजाति को बचाने के लिए एक छुटकारा देने वाले को भेजने का प्रस्ताव दिया।

इस भाव में, पतन के बाद से सारे संसार में, परमेश्वर अपने राज्य के संपूर्ण छुटकारे और उसकी सफलता के लक्ष्य के प्रति कार्य कर रहा था। पुराना नियम हमें बताता है कि सुसमाचार कुछ लोगों का परमेश्वर के साथ मेल कराने और परमेश्वर एवं उसके छुड़ाए हुए लोगों के बीच शांति स्थापित करने के कार्य में लगा हुआ था। परन्तु यद्यपि परमेश्वर ने संपूर्ण पुराने नियम में ऐसे लोगों को हमेशा बनाए रखा जो उसके प्रति विश्वासयोग्य थे, फिर भी उसने अपने राज्य को उस महिमा में पुनर्स्थापित नहीं किया जो इसकी आरंभिक शांति के दिनों में थी।

परन्तु इस संसार में मसीह की सेवकाई के दौरान, शांति की पुनर्स्थापना इस प्रकार तेजी से आगे बढ़ी कि यह अपनी पूर्णता के अंतिम चरणों में पहुंच गई। यीशु वह छुड़ाने वाला था जिसकी ओर सारे पुराने नियम में संकेत किया था। वह पृथ्वी पर परमेश्वर के वासल राजा के रूप में आया था कि वह पृथ्वी पर एक विश्वासयोग्य राजा को पुनर्स्थापित करे और सारे संसार पर परमेश्वर के स्वर्गीय राज्य को फैला दे। वह अभी भी इस कार्य को कर रहा है। और जब वह अपनी महिमा में पुनः आएगा, यीशु राज्य की पुनर्स्थापना को पूरा करेगा, जिसमें वह सारे संसार का हमारे दैवीय राजा के साथ महिमामाय परम मेल कराएगा।

हमने परमेश्वर के राज्य की परिस्थितियों की खोज कर ली है, और अब हम हमारे दूसरे मुख्य विषय की ओर मुड़ने के लिए हैं: परमेश्वर के राज्य में जीवन। इस भाग में, हम उस द्विरूपीय लक्ष्य पर ध्यान देंगे जो परमेश्वर ने अपने राज्य में हमें दिया है।

राज्य में जीवन

इस अध्याय में पहले हमने दिखाया था कि हमारा सबसे महत्वपूर्ण नैतिक लक्ष्य है, परमेश्वर के राज्य की विजय के द्वारा परमेश्वर की महिमा। इस बिंदू पर, हम इस लक्ष्य के कुछ व्यावहारिक आशयों पर ध्यान देंगे, विशेषकर देखेंगे कि परमेश्वर के राज्य के नागरिक होने के नाते इसका हमारे जीवनों से क्या संबंध है। विशेष रीति से, हम इस प्रश्न के उत्तरों को पाने का प्रयास करेंगे: परमेश्वर के राज्य को खोजने में हम किस प्रकार के लक्ष्यों को पाने का प्रयास करते हैं?

वेस्टमिनस्टर लघु प्रश्नोत्तरी अपने पहले प्रश्न और उत्तर में जीवन के हमारे लक्ष्यों के लिए महत्वपूर्ण अगुवाई प्रदान करती है। निम्नलिखित प्रश्न के प्रत्युत्तर में:

> मनुष्य का मुख्य लक्ष्य क्या है?

प्रश्नोत्तरी यह उत्तर देती है

> मनुष्य का मुख्य लक्ष्य परमेश्वर को महिमा देना और सदैव उसका आनन्द लेना है।

आप ध्यान देंगे कि प्रश्नोत्तरी द्विरूपीय लक्ष्य को दर्शाती है। एक ओर तो यह कहती है कि हमें परमेश्वर की महिमा करनी है। और दूसरी ओर, हमें सदैव परमेश्वर का आनन्द लेना है।

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

परमेश्वर के राज्य के द्विरूपीय लक्ष्य के बारे में हमारी चर्चा समान विभाजन को अपनाएगी। पहला, हम इस बात पर ध्यान देंगे कि हमारे दैवीय राजा के रूप में परमेश्वर को महिमा देने का अर्थ क्या है। और दूसरा, हम बात करेंगे कि उसके राज्य में परमेश्वर का आनन्द लेने का अर्थ क्या है। आइए, हमारे दैवीय राजा के रूप में परमेश्वर को महिमा देने के लक्ष्य के साथ आरंभ करें।

परमेश्वर को महिमा देना

इस भाग में, हम इस विचार को खोजेंगे कि परमेश्वर को मुख्य रूप से उसके राज्य की विजय के द्वारा महिमा प्राप्त होती है, और हम ऐसा दो भागों में करेंगे। पहला, हम परमेश्वर की महिमा को परिभाषित करेंगे, और दूसरा, हम परमेश्वर को महिमा देने के विषय में बात करेंगे। आइए पहले परमेश्वर की महिमा के साथ आरंभ करें।

परमेश्वर की महिमा

पवित्रशास्त्र महिमा शब्द - जिसे इब्रानी में कावोद और यूनानी में डोक्सा कहा जाता है- का इस्तेमाल परमेश्वर के बारे में अलग-अलग बातों को कहने के लिए करता है। प्रायः परमेश्वर की "महिमा" उसका प्रकटीकरण है, विशेषकर प्रकाश का वह बादल जो निर्गमन 24:17 या यहेजकेल 10:4 में उसे घेरता है। परन्तु जब हम नैतिक शिक्षा के लक्ष्य के रूप में परमेश्वर की महिमा के बारे में बात करते हैं, तो हम मुख्य रूप से उसके प्रकटीकरण के बारे में बात नहीं कर रहे हैं। बल्कि, हम परमेश्वर के नाम और उसकी प्रतिष्ठा को अधिक महत्व देते हैं, विशेषकर जो प्रतिष्ठा वह अपने सामर्थी कार्यों के द्वारा प्राप्त करता है। उदाहरण के तौर पर, निर्गमन 14:4 में परमेश्वर ने ये शब्द कहे:

> तब फिरौन और उसकी सारी सेना के द्वारा मेरी महिमा होगी; और मिस्री जान लेंगे कि मैं यहोवा हूँ। (निर्गमन 14:4)

इस अनुच्छेद में परमेश्वर ने दर्शाया कि उसकी महिमा, अर्थात् उसके नाम और प्रतिष्ठा, की पहचान तब बढ़ी जब मिस्रियों ने देखा कि उसकी सामर्थ ने उन्हें पराजित कर दिया। उन्होंने उसकी महिमा का विरोध किया लेकिन फिर भी उन्हें उसे पहचानना पड़ा।

परमेश्वर के नाम और उसकी प्रतिष्ठा से जुड़े भाव में ही हम उसे दिए जाने वाले सम्मान और उसकी प्रशंसा के संबंध में भी परमेश्वर की महिमा में रूचि रखते हैं। मिस्रियों के विपरीत, जिन्होंने परमेश्वर की सामर्थ के महिमामय कार्यों का विरोध किया, मसीहियों को चाहिए कि वे परमेश्वर की सामर्थ को सराहें और उसके कार्यों की घोषणा करने और उसे धन्यवाद देने के द्वारा उसके नाम और उसकी प्रतिष्ठा को बढ़ाएं। उदाहरण के तौर पर, भजन 29:1-2 में "महिमा" का यही अर्थ है, जहां हम इन शब्दों को पढ़ते हैं:

> यहोवा की महिमा और सामर्थ को सराहो। यहोवा के नाम की महिमा करो; पवित्रता से शोभायमान होकर यहोवा को दण्डवत् करो। (भजन 29:1-2)

एक और उदाहरण के लिए, प्रकाशितवाक्य 4:9-11 के शब्दों को सुनें:

> और जब वे प्राणी उस की जो सिंहासन पर बैठा है, और जो युगानुयुग जीवित है, महिमा और आदर और धन्यवाद करेंगे। तब चैबीसों प्राचीन सिंहासन पर बैठने वाले के साम्हने गिर पड़ेंगे, और उसे जो युगानुयुग जीवित है प्रणाम करेंगे; और अपने अपने

> मुकुट सिंहासन के साम्हने यह कहते हुए डाल देंगे कि हे हमारे प्रभु, और परमेश्वर, तू ही महिमा, और आदर, और सामर्थ के योग्य है; क्योंकि तू ही ने सब वस्तुएं सृजीं और वे तेरी ही इच्छा से थीं, और सृजी गईं। (प्रकाशितवाक्य 4:9-11)

इस छोटे से अनुच्छेद में हमें तीन बार बताया गया है कि परमेश्वर इस आराधना को अपने शाही सिंहासन पर बैठकर स्वीकार करता है। और सारे पवित्रशास्त्र में यह एक निरन्तर दिखने वाली तस्वीर है।

हमने देख लिया है कि परमेश्वर की महिमा क्या है और किस प्रकार यह अपने राजत्व से संबंध रखती है, तो अब हमें परमेश्वर को महिमा देने के विषय की ओर मुड़ना चाहिए। इस भाग में हम ऐसे प्रश्न पूछेंगे: परमेश्वर की महिमा हमारा लक्ष्य क्यों है? और किस प्रकार हम हमारे दैवीय राजा की महिमा को बढ़ा सकते हैं?

परमेश्वर को महिमा देना

सबसे आधारभूत रूप में, मनुष्यों की यह जिम्मेदारी है कि वे परमेश्वर को महिमा दें क्योंकि वह हमारा राजा है। और हमारे राजा के रूप में उसके पास अधिकार है कि वह हमसे स्तुति और आराधना की मांग करे। जैसे कि वेस्टमिनस्टर लघु प्रश्नोत्तरी अपने पहले प्रश्न और उत्तर में दर्शाती है, मानवजाति का आधारभूत लक्ष्य परमेश्वर की महिमा को बढ़ाना है। और पवित्रशास्त्र में इसे देखने की सर्वोत्तम जगह है सृष्टि का वर्णन, जहां परमेश्वर ने मनुष्यजाति की रचना करने के उद्देश्य को बताया। उत्पत्ति 1:26-28 के शब्दों को सुनें:

> फिर परमेश्वर ने कहा, हम मनुष्य को अपने स्वरूप... में बनाएं; और वे समुद्र की मछलियों, और आकाश के पक्षियों, और घरेलू पशुओं, और सारी पृथ्वी पर, और सब रेंगने वाले जन्तुओं पर जो पृथ्वी पर रेंगते हैं, अधिकार रखें। तब परमेश्वर ने मनुष्य को अपने स्वरूप के अनुसार उत्पन्न किया,... और परमेश्वर ने उन को आशीष दी, और उन से कहा, फूलो-फलो और पृथ्वी में भर जाओ, और उसको अपने वश में कर लो; और समुद्र की मछलियों, तथा आकाश के पक्षियों, और पृथ्वी पर रेंगने वाले सब जन्तुओ पर अधिकार रखो। (उत्पत्ति 1:26-28)

जब परमेश्वर ने मनुष्यजाति की रचना की तो उसने हमें एक उद्देश्य दिया। और वह उद्देश्य था उसके वासल राजाओं के रूप में पृथ्वी पर अधिकार करें, और ऐसा करके सारे संसार में उसके राज्य के शासन और उसकी आशीषों को फैला दें। और मसीह के वासल राजत्व के अधीन आज भी हमारा उद्देश्य यह है। हमें परमेश्वर के शासन और आशीषों को बढ़ाने के द्वारा संसार को बेहतर बनाना है। और हमें उसके राज्य के नागरिकों को बढ़ाना है और उन्हें हमारे महान् सुजरेन राजा को पहचानना, सम्मान देना और स्तुति देना सिखाना है। और जब हम इस उद्देश्य को पूरा करते हैं, तो परमेश्वर का महत्व, नाम और प्रतिष्ठा बढ़ जाते हैं। और इस प्रकार उसकी महिमा भी बढ़ जाती है।

और हम पूरे पवित्रशास्त्र में कई रूपों में परमेश्वर की महिमा के महत्व को बार-बार पाते हैं। उदाहरण के तौर पर, भजन संहिता हमें परमेश्वर के भले कार्यों और सामर्थ पर ध्यान लगाना सिखाती है, जो उसके नाम और उसकी प्रतिष्ठा को बढ़ाता है।

और कई ऐतिहासिक पुस्तकें परमेश्वर के सामर्थ, दया और दण्ड के अनेक कार्यों को दर्शाती हैं। उनके लेखनों के माध्यम से वे हमें परमेश्वर की भलाई और सर्वोच्चता को स्मरण रखना सिखाती हैं, और वे हमें उसकी स्तुति करने के और अधिक कारण बताते हैं।

वहीं भविष्यवाणिय पुस्तकें हमें परमेश्वर की भावी महिमा में आशा रखना सिखाती हैं। और इसी आशा को इस जीवन में धार्मिकता का अनुसरण करने का हमारा प्रोत्साहन बनना है।

इससे बढ़कर, परमेश्वर की व्यवस्था में परमेश्वर की आज्ञाओं के प्रति आज्ञाकारिता वास्तव में उसकी महिमा के सम्मान के समकक्ष रखी गई है। सुनिए किस प्रकार मूसा ने व्यवस्थाविवरण 28:58 में व्यवस्था को सारगर्भित किया:

> यदि तू इन व्यवस्था के सारे वचनों का पालन करने में, जो इस पुस्तक में लिखे हैं, चौकसी करके उस आदरनीय और भययोग्य नाम का, जो यहोवा तेरे परमेश्वर का है, भय न माने, (व्यवस्थाविवरण 28:58)

मूलतः मूसा ने यहां पर एक ही आज्ञा बताई है। परन्तु उसने इसे दो भागों में दर्शाया है। सरल रूप में कहें तो, परमेश्वर के महिमामय नाम को सम्मान देना और उसकी व्यवस्था के सारे वचनों का ध्यान से पालन करना एक ही बात है। और यह इसलिए है क्योंकि हम परमेश्वर और उसकी महिमा के प्रति उचित सम्मान को रखते हैं, तो हम उसकी सारी आज्ञाओं के प्रति आज्ञाकारिता में सम्मान को व्यक्त करते हैं।

यीशु ने यही बात मत्ती 22:37-40 में सिखाई थी। वहां उसके शब्दों को सुनें:

> तू परमेश्वर अपने प्रभु से अपने सारे मन और अपने सारे प्राण और अपनी सारी बुद्धि के साथ प्रेम रख। बड़ी और मुख्य आज्ञा तो यही है। और उसी के समान यह दूसरी भी है, कि तू अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम रख। ये ही दो आज्ञाएं सारी व्यवस्था और भविष्यवक्ताओं का आधार है। (मत्ती 22:37-40)

यीशु ने यह सिखाने के लिए व्यवस्थाविवरण 6:5 को उद्धृत किया कि परमेश्वर से प्रेम करने की आज्ञा बाकी सारी आज्ञाओं का आधार है। और निसंदेह, परमेश्वर से प्रेम करने में उसके महत्व को पहचानना और पुष्टि करना, एवं उसकी सराहना करना तथा उसे सम्मान देना भी शामिल होता है। सारांश में, परमेश्वर से प्रेम करना उसे महिमा देने का एक महत्वपूर्ण तरीका है।

अब, हमारे लिए जितना महत्वपूर्ण हमारे हृदयों को परमेश्वर की महिमा पर लगाना है, वैसे ही परमेश्वर को महिमा देना हमारे द्विरूपीय लक्ष्य का एक हिस्सा ही है। हमें सदैव परमेश्वर का आनन्द भी उठाना है। अतः, आइए परमेश्वर के इस आनन्द को देखें जो हमारे मुख्य लक्ष्य का एक महत्वपूर्ण पहलू है।

परमेश्वर का आनन्द उठाना

अब, जब हम बाइबलीय नैतिक शिक्षा के एक मुख्य लक्ष्य के रूप में हमारे आनन्द के बारे में बात करते हैं तो कुछ मसीही थोड़े चकित हो जाते हैं। आखिरकार, नैतिक जीवन के लिए हमारा स्तर परमेश्वर का चरित्र होना चाहिए, न कि हमारी इच्छाएं या अभिलाषाएं। अतः, हम इस समस्या का समाधान कैसे करें? हम प्रसन्नता के लिए हमारी अपनी अभिलाषाओं का मेल परमेश्वर की अभिलाषाओं से कैसे कराएं कि हम परमेश्वर को महिमा देने वाले और उसके राजत्व को बढ़ाने वाले संसार की रचना कर सकें? कोई आश्चर्य की बात नहीं कि इसका उत्तर है कि एक सही मानवीय आनन्द परमेश्वर को महिमा देता है।

हम दो विचारों के बारे में बात करेंगे जो दर्शाते हैं कि मनुष्य द्वारा परमेश्वर का आनन्द उठाना वास्तव में उसे महिमा प्रदान करता है। पहला, हम परमेश्वर के राज्य में मानवजाति की भूमिका पर ध्यान देंगे। और दूसरा, हम हमारे ध्यान को व्यवस्था की भूमिका पर लगाएंगे जो परमेश्वर ने अपने राज्य पर अधिकार करने के

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

लिए दी थी। दैवीय राजा को महिमा प्रदान करने के माध्यम के रूप में मानवजाति के लिए परमेश्वर के उद्देश्य को देखने के द्वारा आरंभ करें।

मानवजाति की भूमिका

जब परमेश्वर ने मानवजाति की रचना की, तो मनुष्यजाति का उद्देश्य परमेश्वर के राज्य को भरना और उस पर अधिकार रखना था। परन्तु परमेश्वर केवल ऐसे नागरिकों को ही नहीं चाहता जो उसकी सेवा करें। परमेश्वर प्रेमी राजा है। वह हमारे प्रति भला, दयालु और उपकारी है। वह हमसे प्रेम करना चाहता है। उसका आदर्श राज्य ऐसा नहीं है कि जिसमें हम दण्ड से बचने के लिए डर से कांपें और आज्ञा मानें। बल्कि, परमेश्वर के आदर्श राज्य में हरेक प्रभु से प्रेम करता है एवं उसके और उसके लोगों के साथ संगति करता है।

रोमियों 14:17 पर ध्यान दें, जहां पौलुस ने यह तर्क रखा:

> क्योंकि परमेश्वर का राज्य खाना पीना नहीं; परन्तु धर्म और मिलाप और आनन्द है। (रोमियों 14:17)

परमेश्वर के राज्य के लोगों में आनन्द और शांति की विशेषताएं होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में, उन्हें उन आशीषों का आनन्द उठाना चाहिए जो उनका परमेश्वर उन्हें देता है। और इन शब्दों को सुनिए जो यीशु ने मत्ती 13:44 में सिखाए:

> स्वर्ग का राज्य खेत में छिपे हुए धन के समान है, जिसे किसी मनुष्य ने पाकर छिपा दिया, और मारे आनन्द के जाकर और अपना सब कुछ बेचकर उस खेत को मोल लिया। (मत्ती 13:44)

परमेश्वर का राज्य एक बड़े आनन्द का कारण है। और परमेश्वर के राज्य की आशीषों का एक उचित मानवीय प्रत्युत्तर प्रसन्नता और आनन्द है।

यह ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि यीशु ने यह शिक्षा परमेश्वर के न्याय के आने वाले दिन को स्पष्ट करने के संदर्भ में दी। उस दिन, जो परमेश्वर के प्रति विश्वासयोग्य हैं वे अद्‌भुत महिमा को प्राप्त करेंगे- एक ऐसी महिमा जो उस सारी कीमत से बढ़कर है जो हम इस जीवन में अदा कर सकते हैं। और इस भावी महिमा के कारण हमें राज्य में हमारी वर्तमान भागीदारी में यह जानते हुए आनन्दित होना चाहिए कि हम हमारा खजाना स्वर्ग में एकत्रित कर रहे हैं।

हम देख चुके हैं कि परमेश्वर के राज्य में मानवजाति की भूमिका के कारण एक उचित मानवीय आनन्द परमेश्वर को महिमा देता है, इसलिए अब हमें व्यवस्था की भूमिका की ओर मुड़ना चाहिए, और यह देखना चाहिए कि कैसे परमेश्वर के राज्य के नियमों की रचना और उनका अभिप्राय हमारे आनन्द के लिए है।

व्यवस्था की भूमिका

परमेश्वर की व्यवस्था एक ऐसा प्रकट स्तर है जिसके द्वारा वह अपने राज्य को संचालित करता है, और हमारी जिम्मेदारी उनका पालन करना है। और जब हम व्यवस्था के अनुसार जीते हैं, तो हम उन आशीषों को प्राप्त करते हैं जो परमेश्वर ने अपने राज्य के आज्ञाकारी नागरिकों के लिए रखी हैं। अतः, हम कह सकते हैं कि व्यवस्था की एक भूमिका हमें ऐसे जीवन जीने में निर्देशित करना है जो आशीष और आनन्द की ओर अगुवाई करता है।

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

अब निसंदेह, यदि हम व्यवस्था को गलत रूप में इस्तेमाल करते हैं तो हम व्यवस्था को एक ऐसे कार्य को पूरा करने के लिए कहते हैं जो परमेश्वर ने कभी नहीं रखा था। और इसके भयानक परिणाम हो सकते हैं। उदाहरण के तौर पर, यदि हम व्यवस्था का पालन करने के द्वारा उद्धार प्राप्त करना चाहते हैं तो व्यवस्था मृत्यु की ओर अगुवाई करेगी। गलातियों 3:10 में पौलुस ने यही तर्क दिया जहां उसने इन शब्दों के द्वारा व्यवस्था पर टिप्पणी की:

> जितने लोग व्यवस्था के कामों पर भरोसा रखते हैं, वे सब श्राप के आधीन हैं, क्योंकि लिखा है, कि जो कोई व्यवस्था की पुस्तक में लिखी हुई सब बातों के करने में स्थिर नहीं रहता, वह श्रापित है। **(गलातियों 3:10)**

जब हम व्यवस्था का गलत रूप में प्रयोग करते हैं तो यह श्राप बन जाती है, जैसे कि जब हम मसीह के कार्यो की अपेक्षा हमारे अपने भले कार्यों के द्वारा उद्धार प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। और कई अवसरों पर बाइबल व्यवस्था के दुरूपयोग के विषय में काफी नकारात्मक रूप में भी बात करती है।

परन्तु प्रायः बाइबल परमेश्वर की व्यवस्था के उचित उपयोग को मानवजाति की बड़ी आशीष के रूप में कहती है। और यह चकित करने वाली बात नहीं है। आखिकरकार, व्यवस्था हमारे समक्ष परमेश्वर को प्रकट करती है, और यह सिखाती है कि उसे कैसे प्रसन्न करना है, और कैसे उसकी आशीषें प्राप्त करनी हैं। वास्तव में, पवित्रशास्त्र परमेश्वर की व्यवस्था को भजन 1:2 में प्रसन्नता के रूप में और भजन 119:29 में अनुग्रहकारी वरदान के रूप में कहता है। और यह सिखाता है कि व्यवस्था का पालन करने से परमेश्वर के राज्य की वाचायी आशीषें मिलती हैं, जैसे कि व्यवस्थाविवरण 28:1-14। सारांश में, व्यवस्था हमारी भलाई, हमारी खुशहाली, और हमारे आनन्द के लिए दी गई थी। दाऊद ने व्यवस्था के इस दृष्टिकोण को भजन 19:7-8 में दर्शाया जहां उसने ये शब्द लिखे:

> यहोवा की व्यवस्था खरी है, वह प्राण को बहाल कर देती है... यहोवा के उपदेश सिद्ध हैं, हृदय को आनन्दित कर देते हैं, यहोवा की आज्ञा निर्मल है, वह आंखों में ज्योति ले आती है। **(भजन 19:7-8)**

हमारे जीवनों में आनन्द को उत्पन्न करने के लिए परमेश्वर ने हमें कुछ नियम दिए हैं। और वे नियम उसकी व्यवस्था है। अतः, जब हम परमेश्वर की व्यवस्था का पालन करते हैं, तो हम एक ही समय में उसका आनन्द उठाते हैं और उसकी महिमा करते हैं। हम उसका आनन्द उठाते हैं क्योंकि वह हमारी आज्ञाकारिता को आशीषित करता है और क्योंकि यह हमें खुशी देता है कि हम उस परमेश्वर को प्रसन्न करें जो हमसे प्रेम करता है। और हमारा भक्तिपूर्ण आनन्द उसके उद्देश्य को पूरा करने के द्वारा, उसके महत्व को मानने के द्वारा, और उसके प्रति आभार व्यक्त करने के द्वारा परमेश्वर को महिमा देता है। इन सारे रूपों में, व्यवस्था की भूमिका हमें दिखाती है कि परमेश्वर का आनन्द उठाना मानवजाति के लिए परमेश्वर के लक्ष्य का एक महत्वपूर्ण भाग है।

अब निसंदेह, हमारे वर्तमान संसार में, परमेश्वर का आनन्द उठाने में हमारे दुःख बाधा बनते हैं। परन्तु हमें यह याद रखना है कि हमारे लिए परमेश्वर की योजना में हमारे दुःख वास्तव में वह माध्यम है जिसके द्वारा हम परमेश्वर का और अधिक आनन्द ले सकें। रोमियों 5:3-5, याकूब 1:2-4, और 1 पतरस 4:13 हमें सिखाते हैं कि परमेश्वर दुःखों का प्रयोग वैसे ही करता है जैसे कि एक भट्टी आग का प्रयोग महंगी धातुओं की अशुद्धियों को जलाने में करती है। परमेश्वर के हाथों में, हमारा दुःख वह साधन है जो हमारे विश्वास को प्रमाणित करता है और हमें आत्मिक परिपक्वता देता है, और जिसका परिणाम अंत में हमारा आनन्द होता है।

छुड़ाई गई मानवजाति का आनन्द का अनुभव परमेश्वर के राज्य के लिए उसकी योजना का एक महत्वपूर्ण भाग है। उसके द्वारा मानवजाति को दिए गए कार्य, और उसके राज्य में उसकी व्यवस्था को उसके द्वारा दिए गए कार्य पर ध्यान देने से हम देख सकते हैं कि उसके छुड़ाए हुए लोगों के लिए परमेश्वर के परम लक्ष्य का एक भाग यह है कि हम उसका आनन्द लें। और आनन्द के हमारे अनुभव हमारे दैवीय राजा को एक बड़ी महिमा प्रदान करते हैं।

इस अध्याय में अब तक हमने परमेश्वर के राज्य की परिस्थितियों एवं परमेश्वर के राज्य में जीवन का आकलन किया है। अब हम हमारे अंतिम मुख्य विषय की ओर ध्यान देने के लिए तैयार हैं: परमेश्वर के राज्य के लिए कार्यक्रम। इस भाग में, हम उन और अधिक विशेष लक्ष्यों की ओर ध्यान देंगे जो परमेश्वर ने कलीसिया को दिए हैं, जब यह परमेश्वर के राज्य का निर्माण करती है।

राज्य का कार्यक्रम

हर युग में, संसार के लिए परमेश्वर की योजना समान रही है। यह सदा से उसका लक्ष्य रहा है कि वह ऐसे वफादार और धर्मी नागरिकों से सारे संसार को भरने के द्वारा अपने राज्य को स्थापित करे जो उसकी महिमामय उपस्थिति के लिए संसार को स्वर्गलोक में बदल दें। परन्तु यह याद रखना भी सदैव महत्वपूर्ण है कि हर युग में परमेश्वर ने अपने लोगों को यह बताने के लिए सटीक लक्ष्य दिए हैं कि उसके इस व्यापक लक्ष्य को कैसे पूरा किया जाए।

हमारे अध्याय के इस भाग में हम ऐसे दो निर्देशों पर ध्यान देंगे जो परमेश्वर ने अपने लोगों को संसार के इतिहास के महत्वपूर्ण समयों में दिए। पहला, हम सांस्कृतिक आदेश पर ध्यान देंगे, जो परमेश्वर ने आदम और हव्वा को तब दिया जब उसने संसार की रचना की। और दूसरा, हम उस महान् आदेश को देखेंगे, जो यीशु ने अपने पुनरूत्थान के बाद कलीसिया को दिया। आइए पहले हम सांस्कृतिक आदेश की ओर मुड़ें।

सांस्कृतिक आदेश

हम तीन विषयों की ओर देखने के द्वारा सांस्कृतिक आदेश की जांच करेंगे: पहला, हम सांस्कृतिक आदेश की परिभाषा देंगे, जिसमें हम स्पष्ट करेंगे कि यह क्या है और यह सामान्यतः क्या मांग करता है। दूसरा, सांस्कृतिक आदेश और विवाह की सृष्टि विधियों और परिश्रम के बीच के संबंध पर चर्चा करेंगे। और तीसरा, हम परमेश्वर के राज्य संपूर्ण ऐतिहासिक विकास के दौरान सांस्कृतिक आदेश के विभिन्न प्रयोगों पर ध्यान देंगे। आइए हम सांस्कृतिक आदेश को परिभाषित करने के द्वारा आरंभ करें।

परिभाषा

सरल शब्दों में, "सांस्कृतिक आदेश" की अभिव्यक्ति परमेश्वर की उस आज्ञा को दर्शाती है कि मनुष्यजाति को मानवीय संस्कृति के विकास के माध्यम से परमेश्वर के राज्य को पृथ्वी की छोर तक फैलाना है। जैसा कि हमने इस अध्याय में पहले देखा था, जब परमेश्वर ने संसार की रचना की, तो उसने मानवजाति को पृथ्वी को भरने और इस पर अधिकार करने की आज्ञा दी थी। हम यह आज्ञा उत्पत्ति 1:28 में पाते हैं जहां हम इन शब्दों को पढ़ते हैं:

> फूलो-फलो, और पृथ्वी में भर जाओ, और उसको अपने वश में कर लो। (उत्पत्ति 1:28)

हम इस आज्ञा के विषय में पूरे संसार में परमेश्वर के राज्य को फैलाने की हमारी जिम्मेदारी के संबंध में बात कर चुके हैं। परन्तु धर्मविज्ञानी इसे सांस्कृतिक आदेश के रूप में भी कहते हैं क्योंकि पृथ्वी को भरना और इस पर अधिकार रखना वहां पर मानवीय संस्कृतियों का निर्माण करना है जहां पहले कुछ भी नहीं था।

आपको याद होगा कि जब परमेश्वर ने संसार की रचना की, तो अदन की वाटिका ही वह क्षेत्र था जिसे उसने मानवजाति के एक सिद्ध निवास-स्थान के रूप में तैयार किया था, और वह एक ऐसा स्थान था जो उसके लिए इतना सिद्ध था कि वह मानवजाति के साथ अपनी महिमा में वहां रह सके। यह मानवजाति का कार्य था कि वे परमेश्वर के लोगों के समुदाय को बढ़ाकर बाकी संसार को बेहतर बनाए और उसे भर दे, और इस प्रकार पूरे ब्रह्मांड में परमेश्वर के महिमामय राज्य की उपस्थिति को फैला दे।

इस भाव में, सांस्कृतिक आदेश धर्मी, परमेश्वर का भय मानने वाले लोगों और समाजों, को स्थापित करने की आज्ञा है, और उस संसार में किए जाने वाले सुधार भी उसमें शामिल हैं जो इन समाजों से ही जुड़ा है। सांस्कृतिक आदेश का केन्द्र परमेश्वर की महिमा के लिए ख़ाली संसार को भरने, नए समाजों का निर्माण करने, और संसार की जंगली एवं बंजर भूमि को सुंदर, उत्पादक एवं जीवनदायी वाटिकाओं में बदलने पर है।

हमने सांस्कृतिक आदेश की आधारभूत परिभाषा को देख लिया है, इसलिए अब हम हमारे दूसरे विषय को संबोधित करने के लिए तैयार हैं: विवाह और परिश्रम की सृष्टि की विधियां, जो सांस्कृतिक आदेश की कुछ मुख्य बातों को प्रस्तुत करती हैं।

सृष्टि की विधियां

परमेश्वर कई रूपों में अपनी आज्ञाएं हमारे समक्ष प्रकट करता है। उदाहरण के तौर पर, पवित्रशास्त्र में बताई गई अधिकांश आज्ञाएं मौखिक हैं। अर्थात्, उन्हें शब्दों के द्वारा बताया गया है। और परमेश्वर प्राकृतिक माध्यमों के जरिये भी अपनी आज्ञाएं हम पर प्रकट करता है, जैसे कि हमारे चारों ओर के संसार के द्वारा, प्रकृति और अन्य लोगों के द्वारा। परन्तु परमेश्वर की आज्ञाएं परमेश्वर के सृष्टि के कार्यों के द्वारा भी प्रकट होती हैं। सृष्टि की विधि वह आज्ञा है जो परमेश्वर के सृष्टि के पहले कार्यों के द्वारा प्रकट हुई, जब उसने आकाश और पृथ्वी की रचना की।

जैसा कि हम देख चुके हैं, सांस्कृतिक आदेश एक मौखिक आज्ञा थी। उत्पत्ति 1:28 हमें सिखाता है कि परमेश्वर ने मानवजाति को सांस्कृतिक आदेश तब दिया जब उसने उनकी रचना की, वह आदेश था कि पृथ्वी को भरो और इस पर अधिकार करो।

और ऐसी कुछ बातें जो परमेश्वर ने सांस्कृतिक आदेश में कहीं, वही उसने विवाह और परिश्रम की सृष्टि की विधियों में भी प्रकट कीं। उदाहरण के तौर पर, विवाह की सृष्टि की विधि उस उद्देश्य पर आधारित है जिसके लिए परमेश्वर ने दो रूपों, स्त्री और पुरूष, में रचना की।

हम आदम और हव्वा के विवाह की आधारभूत बातों से परिचित हैं: पहली, आदम की रचना की गई; तब परमेश्वर ने हव्वा को आदम की पसली से बनाया; और अंत में, परमेश्वर ने हव्वा आदम को सौंप दी, और वे पति और पत्नी बन गए। परन्तु सुनिए उत्पत्ति 2:24 में मूसा ने आदम और हव्वा के विवाह पर क्या कहा:

> इस कारण पुरूष अपने माता पिता को छोड़कर अपनी पत्नी से मिला रहेगा और वे एक तन बने रहेंगे। (उत्पत्ति 2:24)

यहां मूसा ने दर्शाया कि परमेश्वर ने स्त्री और पुरूष को विवाह, एक पुरूष एक स्त्री के साथ, के उद्देश्य के साथ रचा।

सृष्टि में परमेश्वर के उद्देश्य परमेश्वर के चरित्र की अभिव्यक्तियां हैं। फलस्वरूप, वे सारे मनुष्यों के लिए निर्देशात्मक हैं। और इसलिए, जब हम देखते हैं कि उसने मनुष्य को स्त्री और पुरूष के रूप में विवाह के उद्देश्य से रचा, तो हमें यह निष्कर्ष निकालना चाहिए कि मनुष्य की जिम्मेदारी है कि वह विवाह करे और विवाह एक पुरूष और एक स्त्री का संयोजन होना चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं है कि हर व्यक्ति को विवाह करना आवश्यक है। परन्तु इसका अर्थ यह अवश्य है कि सारी मनुष्यजाति विवाह की इस भक्तिमय विधि को बनाए रखे।

और विवाह की सृष्टि की विधि प्रत्यक्ष रूप से पृथ्वी को भरने, फलने-फूलने और बढ़ने के सांस्कृतिक आदेश से संबंध रखती है। सरल रूप में कहें तो, पवित्रशास्त्र निर्देश देता है कि संतान का जन्म वैवाहिक संबंध में ही होना चाहिए, और इसलिए मनुष्यों की बढ़ोतरी में विवाह अत्यावश्यक है।

वैसे ही, सृष्टि की एक विधि है जो प्रत्यक्ष रूप से हमें परिश्रम करने, पूरी पृथ्वी पर परमेश्वर के राज्य का विस्तार करने की आज्ञा देती है। उत्पत्ति 2:15,18 में इन विवरणों को सुनें:;

> तब यहोवा परमेश्वर ने आदम को ले कर अदन की वाटिका में रख दिया कि वह उस में काम करे... फिर यहोवा परमेश्वर ने कहा, आदम का अकेला रहना अच्छा नहीं, मैं उसके लिये एक ऐसा सहायक बनाऊंगा जो उससे मेल खाए। (उत्पत्ति 2:15,18)

पहले मनुष्य आदम को परमेश्वर की वाटिका में परिश्रम करने के लिए रचा गया था। और उसकी पत्नी, हव्वा, को इस कार्य में उसकी सहायता करने के लिए रचा गया था।

अतः, जब हम पढ़ते हैं कि मनुष्यजाति के लिए परमेश्वर का उद्देश्य यह है कि हम उसके लिए परिश्रम करें, तो हमें यह मान लेना चाहिए कि परमेश्वर के लिए परिश्रम करने की नैतिक जिम्मेदारी हम पर है। और परिश्रम की यह सृष्टि की विधि प्रत्यक्ष रूप से पृथ्वी पर अधिकार करने, अर्थात् सारे संसार में मानवीय समाजों को स्थापित करने, के सांस्कृतिक आदेश की आज्ञा से संबंध रखती है। आखिरकार, यदि यह उस प्रयास और परिश्रम के द्वारा होता जो परमेश्वर की वाटिका की देखभाल करने में मानवजाति को लगाना था, तो निश्चित रूप से इस प्रयास में सारी पृथ्वी को शामिल करने में बहुत अधिक परिश्रम की आवश्यकता होती।

जैसा कि हमने इस पूरे अध्याय में कहा है, परमेश्वर के राज्य का निर्माण ही मानवजाति का लक्ष्य है। और सृष्टि की विधियां हमें वे दो आधारभूत रूप दर्शाती हैं जिनमें परमेश्वर ने इस लक्ष्य को पाने के लिए कार्य करने की आज्ञा दी है। फलस्वरूप, कलीसिया को सदैव विवाह और परिश्रम की पुष्टि करनी चाहिए और उनमें संलिप्त होना चाहिए। और जब हम ऐसा करते हैं, तो हम पृथ्वी पर परमेश्वर के राज्य को बढ़ाएंगे और उसे आदर और महिमा प्रदान करेंगे।

हम सांस्कृतिक आदेश और विवाह एवं परिश्रम की सृष्टि की विधियों से इसके संबंध को स्पष्ट कर चुके हैं, अब हम परमेश्वर के राज्य के भिन्न-भिन्न ऐतिहासिक समयों में सांस्कृतिक आदेश के विभिन्न प्रयोगों की ओर मुड़ने के लिए तैयार हैं।

प्रयोग

जैसा कि हम देख चुके हैं, सांस्कृतिक आदेश सृष्टि के समय मानवजाति के पाप में गिरने से पहले दिया गया था। उस समय, परमेश्वर का अपने लोगों से मेलमिलाप था। और क्योंकि वहां मानवीय समाज में पाप नहीं

था, तो सांस्कृतिक आदेश का लक्ष्य परमेश्वर के राज्य का विस्तार और विकास ही था, विशेषकर परमेश्वर के राज्य में नागरिकों को बढ़ाना और मानवीय समाजों की रचना के लिए प्राकृतिक संसार को पुनः व्यवस्थित करना। इस भाव में, सांस्कृतिक आदेश मूल रूप से छुटकारे या पुनर्स्थापना की आज्ञा की अपेक्षा एक सरल सृजनात्मक आदेश था; मनुष्यजाति को विवाह के माध्यम से अधिक लोगों की रचना करनी थी, और परिश्रम के माध्यम से व्यवस्थित समाजों की रचना करनी थी।

परन्तु मानवजाति के पाप में गिरने के साथ ही मानवीय संस्कृति भ्रष्ट हो गई और परमेश्वर ने पाप के कारण मानवजाति को श्रापित किया। अन्य बातों के साथ-साथ, यह भ्रष्टाचार और श्राप विशेषकर विवाह और परिश्रम पर लागू हुआ।

विवाह के विषय में परमेश्वर ने उत्पत्ति 3:16 में निम्नलिखित श्राप दिया:

> मैं तेरी पीड़ा और तेरे गर्भवती होने के दुःख को बहुत बढ़ाऊंगा... तेरी लालसा तेरे पति की ओर होगी, और वह तुझ पर प्रभुता करेगा। (उत्पत्ति 3:16)

ध्यान दें कि हव्वा का श्राप जन्म देने, जो उसके लिए अब बहुत अधिक पीड़ादायक होगा, और विवाह, जिसमें अब संघर्ष और मतभेद होंगे, दोनों पर लागू हुआ।

परमेश्वर ने उत्पत्ति 3:17-19 में इन शब्दों के साथ आदम को श्राप दिया:

> भूमि तेरे कारण शापित है, तू उसकी उपज जीवन भर दुःख के साथ खाया करेगा,... और अपने माथे के पसीने की रोटी खाया करेगा। (उत्पत्ति 3:17-19)

भूमि पर दिए गए श्राप से पहले, भूमि मानवजाति के परिश्रम के समक्ष आसानी से उपज प्रदान कर देती थी। इस श्राप के द्वारा मानवजाति के लिए अब पृथ्वी पर अधिकार करने एवं भौगोलिक रूप से परमेश्वर के राज्य को फैलाने की अपनी जिम्मेदारियों को पूरा करना बहुत मुश्किल हो गया।

मनुष्यजाति सारे इतिहास में पाप करती रही, इसलिए कोई भी मानवीय समाज पृथ्वी पर परमेश्वर के राज्य को प्रकट नहीं करता। परन्तु सांस्कृतिक आदेश अभी भी हम पर विवाह करने और संतान उत्पन्न करने, एवं परिश्रम करने की जिम्मेदारी डालता है ताकि पृथ्वी की छोर तक परमेश्वर के राज्य को फैलाया जा सके। अतः हमें सांस्कृतिक आदेश को संसार के भ्रष्टाचार के प्रकाश में किस प्रकार समझना चाहिए?

इसका उत्तर यह है कि सांस्कृतिक आदेश का अब एक विस्तृत प्रयोग है। सांस्कृतिक आदेश का लक्ष्य अपने लोगों के बीच परमेश्वर के निवास स्थान के लिए सारे संसार को पृथ्वी पर परमेश्वर के राज्य में परिवर्तित करना है। पतन से पहले, यह कार्य केवल नए समाजों और संस्कृतियों का निर्माण करके होना था।

परन्तु अब कार्य कठिन है। अब न केवल हमें पृथ्वी पर अधिकार करके उसे परमेश्वर के विश्वासयोग्य लोगों से भरना है, बल्कि हमारी संस्कृतियों से पाप को हटाने के द्वारा पतित मानवीय समाज को पुनर्स्थापित करना और छुड़ाना भी है। और वास्तव में, बाइबल पुनर्स्थापना और छुटकारे के इस महत्व को मनुष्यजाति के पाप में पतन के ठीक बाद स्पष्ट करती है। उदाहरण के तौर पर, जब परमेश्वर ने अदन की वाटिका में सांप को श्राप दिया, तो उसने मानवजाति को छुटकारे की आशा भी दी। उत्पत्ति 3:15 में उसके शब्दों को सुनें:

> और मैं तेरे और इस स्त्री के बीच में, और तेरे वंश और इसके वंश के बीच में बैर उत्पन्न करुंगा, वह तेरे सिर को कुचल डालेगा, और तू उसकी एड़ी को डसेगा। (उत्पत्ति 3:15)

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

पतन के बाद श्राप देने के बीच परमेश्वर ने “पहला सुसमाचार” प्रस्तुत किया, जिसमें उसने दर्शाया कि वह अपनी सृष्टि को पाप और श्राप में ही त्याग नहीं देगा।

अतः हम देखते हैं कि विवाह और परिश्रम दोनों में छुटकारे की विशेषताएं हैं। विवाह और संतानोत्पत्ति, चाहे कितने भी पीड़ादायक और मतभेद से भरे वे बन गए थे, ने अंत में संसार के उद्धारकर्ता को जन्म दिया। और परिश्रम, यद्यपि यह बहुत मुश्किल था, ने मानवजाति को भावी छुड़ाने वाले को उत्पन्न करने तक बनाए रखा। और यही प्रारूप पूरे इतिहास में जारी रहना था, जिसका परिणाम अंत में सारे संसार की पुनर्स्थापना है।

उदाहरण के लिए, उत्पत्ति 9 में, नूह के समय के जलप्रलय के बाद, परमेश्वर ने पृथ्वी को भरने की आज्ञा को दोहराया। और उसने संसार को बनाए रखने की प्रतिज्ञा की ताकि मानवजाति इस पर पुनः अधिकार कर सके।

और ध्यान दें कि जैसे परमेश्वर ने नूह के समय में सांस्कृतिक आदेश और सृष्टि की विधियों को लागू किया, यह एक पुनर्स्थापना एवं छुटकारे का कार्य था। परमेश्वर ने सारे पापमय संसार को नष्ट कर दिया था, और अब यह नूह की जिम्मेदारी थी कि उसका पुनर्निमाण करे, नाश की गई पापमय संस्कृतियों को धर्मी, भक्तिपूर्ण संस्कृतियों से बदल दे, और ऐसे मनुष्यों से पृथ्वी को पुनः भर दे जो यहोवा की आज्ञा माने और सम्मान करें।

वैसे ही, उत्पत्ति 15,17 और 22 में परमेश्वर ने प्रतिज्ञा की कि अब्राहम की अनगिनत संतान होगी, और वे न केवल प्रतिज्ञा की भूमि पर, बल्कि अंत में सारी पृथ्वी पर भी अधिकार करेंगे।

परन्तु यहां पर एक छुटकारे-संबंधी पहलु भी था। अब्राहम को प्रतिज्ञा की भूमि में पहले से पाई जाने वाली संस्कृतियों पर विजय पानी थी और उन्हें परमेश्वर के राज्य में बदलना था। और उसकी संतान को अंत में सारे संसार में इस विजय को फैलाना था।

और जो नूह और अब्राहम पर लागू हुआ वह सारी बाइबल में निरंतर लागू होता रहा। उदाहरण के तौर पर, व्यवस्थाविवरण 28 में परमेश्वर ने मूसा के दिनों में इन्हीं अब्राहमीय प्रतिज्ञाओं की पुष्टि की। और भजन 89 में दाऊद और उसकी संतानों पर उनकी पुनः पुष्टि की गई।

और जैसा कि हम प्रकाशितवाक्य 11:15 में पढ़ते हैं, यीशु अंत में सारी पृथ्वी पर राज्य करेगा और परमेश्वर के राज्य को हर कोने तक फैलाएगा। और इब्रानियों 10:12-14 दर्शाते हैं कि जब यीशु ऐसा करता है, तो वह अपने शत्रुओं का नाश करने एवं विश्वासियों को छुड़ाने एवं पुनर्स्थापित करने के द्वारा संसार और मानवजाति दोनों को सिद्ध बनाएगा।

इससे बढ़कर, इफिसियों 5:25-27 हमें सिखाते हैं कि जब मसीह अपने राज्य में आएगा तो वह कलीसिया के साथ विवाह रचाएगा। और इब्रानियों 2:13 के अनुसार मसीह की अनेक संतानें होंगी क्योंकि प्रत्येक विश्वासी उसकी संतान है।

जैसा कि हम देख चुके हैं, सांस्कृतिक आदेश परमेश्वर के राज्य के लिए उसके कार्यक्रम को व्यक्त करता है। परन्तु पतन के बाद इस कार्यक्रम के क्रियान्वयन में छुटकारे और पुनर्स्थापना की एक लम्बी और जटिल प्रक्रिया शामिल हो गई है। फिर भी, विवाह और परिश्रम जैसे कार्यों के द्वारा परमेश्वर अब भी मानवजाति को सांस्कृतिक आदेश पूरा करने के लिए इस्तेमाल कर रहा है। निसंदेह, उसका राज्य तब तक पूर्ण नहीं होगा जब तक मसीह का महिमा में पुनरागमन नहीं होता। परन्तु जब वह दिन आएगा, तो सारा संसार उस स्वर्गलोक में बदल जाएगा जिसकी चाहत परमेश्वर ने सदैव की है।

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

हमने यहां सांस्कृतिक आदेश की आधारभूत समझ को प्राप्त कर लिया है, इसलिए अब हम यह देखने के लिए तैयार हैं कि महान् आज्ञा परमेश्वर के राज्य के लिए उसके कार्यक्रम में क्या भूमिका अदा करती है।

महान् आज्ञा

महान् आज्ञा की हमारी चर्चा तीन भागों में विभाजित होगी: पहली, हम महान् आज्ञा की परिभाषा देंगे। दूसरी, हम महान् आज्ञा के आशयों को स्पष्ट करेंगे। और तीसरी, हम महान् आज्ञा और सांस्कृतिक आदेश के बीच के रिश्ते को जांचेंगे। आइए महान् आज्ञा की परिभाषा के साथ शुरू करें।

परिभाषा

महान् आज्ञा मसीह द्वारा ग्यारह विश्वासयोग्य प्रेरितों को अपने प्रतिनिधित्वों के रूप में नियुक्त करना और सारे संसार में परमेश्वर के राज्य को फैलाने के लिए उन्हें दी गई आज्ञा है। इस आज्ञा को सामान्यतः "महान्" कहा जाता है क्योंकि यह केवल प्रेरितों के ही नहीं बल्कि उनके द्वारा बनाई गई कलीसिया के प्रभावशाली मिशन को भी स्पष्ट करता है।

महान् आज्ञा मत्ती 28:18-20 में पाई जाती है जहां हम प्रभु द्वारा ग्यारह प्रेरितों से कहे ये शब्द पढ़ते हैं:

> स्वर्ग और पृथ्वी का सारा अधिकार मुझे दिया गया है। इसलिये तुम जाकर सब जातियों के लोगों को चेला बनाओ और उन्हें पिता और पुत्र और पवित्रआत्मा के नाम से बपतिस्मा दो। और उन्हें सब बातें जो मैं ने तुम्हें आज्ञा दी है, मानना सिखाओ, और देखो, मैं जगत के अन्त तक सदैव तुम्हारे संग हूँ। (मत्ती 28:18-20)

महान् आज्ञा में तीन मूलभूत तत्व पाए जाते हैं: पहला, यीशु का कथन कि राज्य का निर्माण करने, और चेलों को कार्य करने की आज्ञा देने का अधिकार उसके पास है; दूसरा, प्रेरितों को यीशु द्वारा दिया गया आदेश, जिसमें उसके राज्य के निमार्ण के लिए निर्देश और अधिकार दिया गया; और तीसरा, यीशु का आश्वासन कि इस प्रयास में वह प्रेरितों को सामर्थ देगा और उनकी सुरक्षा करेगा।

यद्यपि महान् आज्ञा केवल प्रेरितों को दी गई थी, परन्तु महान् आज्ञा कलीसिया पर भी जिम्मेदारी डालती है कि वह उनके कार्य को जारी रखे। आखिरकार, यीशु ने प्रेरितों को सारी जातियों के लोगों को चेला बनाने की आज्ञा दी थी- एक ऐसा कार्य जो कुछ लोगों के लिए स्पष्टतः बहुत बड़ा था। उसने जगत के अंत तक उनके साथ रहने की बात भी की थी, और दर्शाया था कि वह अपने आगमन पर इस कार्य की पूर्णता को देखेगा। ये विवरण दर्शाते हैं कि यीशु सदैव चाहता था कि उसके प्रेरित कार्य करने के लिए कलीसिया को स्थापित करने के द्वारा महान् आज्ञा को पूरा करें।

हमने यहां महान् आज्ञा को परिभाषित कर लिया है, अब हमें इसके आशयों की ओर हमारा ध्यान लगाना चाहिए। इस भाग में, हम महान् आज्ञा के प्रकाश में कलीसिया की जिम्मेदारियों पर ध्यान देंगे।

आशय

सरल रूप में कहें तो कलीसिया की जिम्मेदारी राज्य के उस कार्यक्रम को जारी रखना है जो प्रेरितों ने आरंभ किया था। ये जिम्मेदारियां महान् आज्ञा के दूसरे आवश्यक तत्व में सारगर्भित की गई हैं: प्रेरितों को दी गई आज्ञा। यह आज्ञा मत्ती 28:19-20 में पाई जाती है और इसमें निम्नलिखित निर्देश पाए जाते हैं:

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

> तुम जाकर सब जातियों के लोगों को चेला बनाओ और उन्हें पिता और पुत्र और पवित्रआत्मा के नाम से बपतिस्मा दो। और उन्हें सब बातें जो मैंने तुम्हें आज्ञा दी है, मानना सिखाओ। (मत्ती 28:19-20)

यीशु का निर्देश हर जाति के लोगों को चेला बनाना ही नहीं था, बल्कि परमेश्वर के राज्य का विस्तार करके जातियों को ही उसमें शामिल करने का था। दूसरे शब्दों में, वह भौगोलिक विस्तार के साथ-साथ संख्या में बढ़ोतरी की अपेक्षा कर रहा था।

यह कलीसिया का कार्य है कि वह संसार के सब लोगों को सुसमाचार सुनाए, विश्वासियों और उनके परिवारों को कलीसिया में लाए, और उनको बपतिस्मा दे, और उन्हें वह सब करना सिखाए जिसकी आज्ञा यीशु ने दी है। हर पीढ़ी में हमें सारे संसार को परमेश्वर के राज्य में लाने का प्रयास करना है।

महान् आज्ञा को परिभाषित करने और कलीसिया के लिए इसके आशयों का परिचय देने के बाद, अब हम हमारे अंतिम विषय की ओर मुड़ने के लिए तैयार हैं: सांस्कृतिक आदेश और महान् आज्ञा के बीच संबंध।

सांस्कृतिक आदेश

सांस्कृतिक आदेश एवं महान् आज्ञा के बीच संबंध के तीन पहलुओं पर हम ध्यान देंगे: उनके बीच की समानताएं, उनके बीच की भिन्नताएं, और प्रत्येक को हमारे द्वारा दी जाने वाली प्राथमिकताएं। पहले, आइए हम सांस्कृतिक आदेश और महान् आज्ञा के बीच की समानताओं पर ध्यान दें।

सांस्कृतिक आदेश और महान् आज्ञा के बीच की समानताएं दूरगामी हैं। उदाहरण के तौर पर, दोनों ही मानवजाति को परमेश्वर के राज्य का निर्माण करने और इसे हमारे जीवन का प्रमुख लक्ष्य बनाने के लिए प्रेरित करती हैं। और इस राज्य के निर्माण के रूप में, दोनों पृथ्वी को परमेश्वर के राज्य के नागरिकों से भरने की मांग रखते हैं, फिर चाहे वह वैवाहिक संबंध में बच्चों को जन्म देने के द्वारा हो या सुसमाचार प्रचार के द्वारा। और दोनों हमसे प्रथ्वी पर अधिकार करने की मांग करते हैं, फिर चाहे वह समाजों का निर्माण करने के द्वारा हो या जातियों को चेला बनाने के द्वारा।

हम इन समानताओं को यह कहने के द्वारा सारगर्भित कर सकते हैं कि महान् आज्ञा सांस्कृतिक आदेश को मसीह द्वारा लागू करना है जब तक उसका पुनरागमन नहीं होता। मसीह की पृथ्वी पर सेवकाई के समय से महान् आज्ञा सांस्कृतिक आदेश को लागू करने का एक महत्वपूर्ण मार्ग रही है, और यह कलीसिया की जिम्मेदारी है कि वह उसका पालन करे।

इन समानताओं के अतिरिक्त, सांस्कृतिक आदेश और महान् आज्ञा के बीच कुछ भिन्नताएं भी हैं जिन पर हमें ध्यान देना है।

सांस्कृतिक आदेश और महान् आज्ञा के बीच एक महत्वपूर्ण अंतर यह है कि सांस्कृतिक आदेश हर युग के लिए है और महान् आज्ञा मसीह के पुनरागमन से पहले की कलीसिया की विशेष परिस्थिति पर ध्यान देता है। सांस्कृतिक आदेश सृष्टि के समय दिया गया था, और उसी समय से यह सदैव मानवजाति का कार्य रहा है कि वह संसार को परमेश्वर के निवास के लिए स्वर्गलोक में बदल दे।

इसके विपरीत, महान् आज्ञा यीशु मसीह की पृथ्वी की सेवकाई की समाप्ति के समय पर ही दी गई थी, और यह विशेष रूप से राज्य के इतिहास के अंतिम समय के दौरान परमेश्वर के लोगों की प्रमुख नैतिक जिम्मेदारियों पर केन्द्रित थी।

अतः, जहां सांस्कृतिक आदेश हमारी मूलभूत आवश्यकता है, वहीं महान् आज्ञा इतिहास के आज के समय के दौरान उस जिम्मेदारी का प्राथमिक प्रयोग है।

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

एक अन्य महत्वपूर्ण अंतर यह है कि एक-दूसरे की तुलना में सांस्कृतिक आदेश एक विशाल आज्ञा है, वहीं महान् आज्ञा एक संकीर्ण आज्ञा है। सांस्कृतिक आदेश मानवजाति से मांग करता है कि वे विवाह करें और अधिक मनुष्यों को उत्पन्न करने के लिए शारीरिक संतान उत्पन्न करें। और यह इस बात की मांग भी करता है कि हम आत्मिक संतान उत्पन्न करें जो उसके राज्य में परमेश्वर के वफादार स्वरूप हों। इसके विपरीत, महान् आज्ञा चेले बनाने के द्वारा आत्मिक संतान उत्पन्न करने की आवश्यकता पर ही बल देती है।

परिश्रम के विषय में भी कुछ ऐसा ही सही है। जब सांस्कृतिक आदेश सारे संसार में परमेश्वर के राज्य को स्थापित करने पर ध्यान देता है, तो वह हमसे चेला बनाने की मांग भी करता है। परन्तु यह मानवीय समाजों का निर्माण करने में हमसे परिश्रम करने की मांग भी करता है। इसके विपरीत, महान् आज्ञा हमसे केवल चेले बनाने के लिए परिश्रम करने की मांग ही करता है। यह मानवीय समाजों का निर्माण करने की विशेष आवश्यकता को शामिल नहीं करता।

अंत में, सांस्कृतिक आदेश और महान् आज्ञा के बीच समानताओं और भिन्नताओं पर ध्यान देने के बाद, अब हमें प्राथमिकताओं के विषय की ओर मुड़ना चाहिए।

कलीसिया के इतिहास में मसीहियों में प्रायः इस बात पर असहमति रही है कि परमेश्वर का कौनसा महान् आदेश दूसरे आदेश से अधिक प्राथमिक है। कुछ ने तर्क दिया है कि विवाह, संतानोत्पत्ति और परिश्रम में लगे रहने के द्वारा मसीहियों को अपने जीवनों को सांस्कृतिक आदेश की मांगों को पूरा करने में लगाना चाहिए क्योंकि वे मानवीय संस्कृति का निर्माण करते हैं। दूसरों ने तर्क दिया है कि सुसमाचार प्रचार और शिक्षा के द्वारा चेले बनाने के सुसमाचारिक आदेश ने इन मांगों का स्थान ले लिया है। इस समस्या का हम सबके लिए एक महत्वपूर्ण व्यावहारिक महत्व है। हमें एक दिशा में ध्यान लगाना है या दूसरी दिशा में? क्या मानवीय संस्कृति के निर्माण को सुसमाचारिक सेवकाई से अधिक महत्व दिया जाना चाहिए? या सुसमाचारिक सेवकाई को प्राथमिकता दी जानी चाहिए?

एक भाव में, सांस्कृतिक आदेश, महान् आज्ञा से अधिक प्राथमिकता को रखता है, क्योंकि यह पहले आया और मानवजाति के परम लक्ष्य, अर्थात् सारे संसार में परमेश्वर के राज्य की संपूर्ण विजय, को अभिव्यक्त करता है।

परन्तु दूसरे भाव में, महान् आज्ञा अधिक प्राथमिक है क्योंकि यह सांस्कृतिक आदेश को वर्तमान युग की विशेष परिस्थितियों पर लागू करती है, और यह ऐसा उस बात पर ध्यान देने के द्वारा करती है कि हमारे युग में विशेषकर क्या किया जाना चाहिए। जब हम महिमा में मसीह के पुनरागमन की प्रतीक्षा करते हैं, तो हमारी एक सबसे बड़ी प्राथमिकता सुसमाचार की घोषणा के माध्यम से सारे संसार के स्त्रियों और पुरूषों को पाप की शक्ति से छुड़ाना है।

फलस्वरूप, ऐसे समय होंगे जब सांस्कृतिक आदेश की स्पष्ट आज्ञाओं और महान् आज्ञा में एक तनाव प्रतीत हो। जब हम इस तनाव को महसूस करते हैं, तो हमें सदैव महान् आज्ञा की प्रमुखताओं पर ध्यान देना चाहिए। यदि हम हमारे जीवनों में विवाह और परिश्रम की सांस्कृतिक आदेश की आज्ञाओं और सुसमाचार प्रचार एवं चेले बनाने की आज्ञाओं के बीच तनाव को पाते हैं तो हमें महान् आज्ञा के प्रकाश में सांस्कृतिक आदेश का मूल्यांकन करना चाहिए। हमें यह समझने की आवश्यकता है कि महान् आज्ञा के कथन हमारे समय के लिए सांस्कृतिक आदेश की निर्देशात्मक व्याख्याएं एवं उसके प्रयोग हैं। और इस भाव में, जब वर्तमान संसार में इसे लागू करने की बात आती है तो हमें महान् आज्ञा को कुछ प्राथमिकता देने की आवश्यकता है।

1 कुरिन्थियों 9:15-23 में पौलुस ने विवाह करने के अपने अधिकार और अपने परिश्रम की मजदूरी को त्याग देने की बात कही। वहां उसके इन शब्दों को सुनें:

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

> परन्तु मैं इन में से कोई भी बात काम में न लाया... मैं सब मनुष्यों के लिये सब कुछ बना हूँ, कि किसी न किसी रीति से कई एक का उद्धार कराऊं। और मैं सब कुछ सुसमाचार के लिये करता हूँ, कि औरों के साथ उसका भागी हो जाऊं। (1 कुरिन्थियों 9:15-23)

निष्कर्ष में, सांस्कृतिक आदेश परमेश्वर का अपने राज्य के लिए व्यापक कार्यक्रम है। उसका परम लक्ष्य उसके राज्य को सारी सृष्टि में फैलाना और विश्वासयोग्य नागरिकों के द्वारा उसके राज्य को भरना है। और उसने विवाह एवं परिश्रम को इस लक्ष्य को पूरा करने के माध्यमों के रूप में स्थापित किया है।

परन्तु मानवजाति के पाप में पतन ने हमारे लिए इस लक्ष्य को पूरा करना असंभव कर दिया है। इसलिए, परमेश्वर ने मानवजाति को छुड़ाना आरंभ कर दिया है ताकि हम संसार को पुनर्स्थापित कर सकें और उसे उसके सिद्ध राज्य में परिवर्तित कर सकें। और जो प्राथमिक माध्यम उसने छुटकारे और पुनर्स्थापना के लिए दिए हैं, वे हैं सुसमाचार प्रचार और चेला बनाना, अर्थात् वे बातें जिनकी आज्ञा उसने महान् आज्ञा में दी है।

अतः महान् आज्ञा इस वर्तमान युग के लिए सांस्कृतिक आदेश का निर्देशात्मक प्रयोग है जिसमें परमेश्वर के राज्य के अंतिम चरण आरंभ हो चुके हैं, परन्तु अभी तक हम उसकी पूर्णता तक नहीं पहुंचे हैं।

निष्कर्ष

इस अध्याय में हमने देखा है कि परमेश्वर का राज्य मसीही नैतिक शिक्षा का परम लक्ष्य है। हमने परमेश्वर के राज्य की परिस्थितियों पर ध्यान दिया है, जिसमें इसका महत्व, इसके घटक और इसका विकास शामिल थे। हमने परमेश्वर के राज्य के हमारे अनुभव पर विचार-विमर्श किया है, जिसमें हमने हमारे द्विरूपीय लक्ष्य को देखा। और हमने राज्य के कार्यक्रम को भी देखा, जैसा कि यह सांस्कृतिक आदेश और महान् आज्ञा में पाया जाता है।

राज्य की सफलता परमेश्वर का अपनी सृष्टि के लिए परम लक्ष्य है। और इसलिए, यह हमारा भी परम लक्ष्य होना चाहिए। वास्तव में, हमारे सारे विचारों, शब्दों और कार्यों को किसी न किसी रूप में परमेश्वर के राज्य के निर्माण में योगदान देना चाहिए। जब वे ऐसा करते हैं, तो परमेश्वर उन्हें प्रमाणित और आशीषित करता है, जिससे उन्हें नैतिक रूप से अच्छा कहा जाए। और जब वे राज्य के लक्ष्य से भटक जाते हैं, तो परमेश्वर उनकी निन्दा करता है जिससे उन्हें बुरा कहा जाता है। जब कभी भी हमें नैतिक निर्णय लेना होता है तो हमें यह ध्यान रखना जरूरी है कि किन रूपों में हमारे निर्णय परमेश्वर के राज्य को प्रभावित करेंगे।

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।